thearyasamaj.org

R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

दिसम्बर 2014

अंक 11

तपोभूमि

मासिक

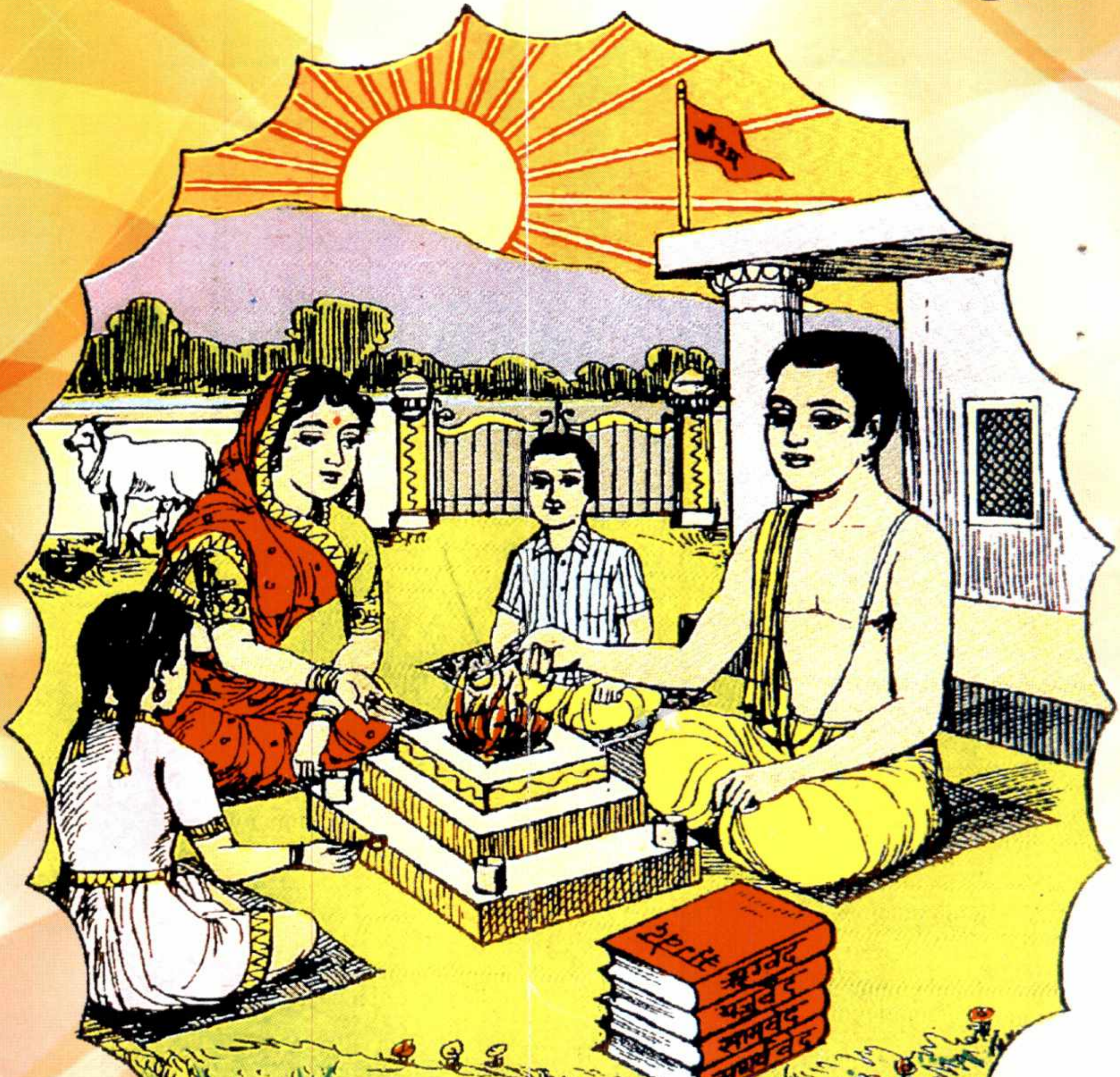

thearyasamaj.org

मनुष्य जाति का सुधार कैसे हो?

भारतवर्ष विशेषतः नवभारत की दृष्टि अपने सुधार तथा पुनरुद्धार के लिए योरोप की ओर लगी हुई थी। पर अब वर्तमान विश्वव्यापी युद्ध में योरोपियन सभ्य जातियों के आचरणों ने सिद्ध कर दिया है कि योरोपियन सभ्य जातियाँ स्वयं गुमराह हैं। वे दूसरों की रहबरी क्या करेगी? अन्धा अन्धे को कैसे मार्ग दिखला सकता है?

योरोप और अमेरिका के विचारक अब मान रहे हैं कि वर्तमान पश्चिमीय सभ्यता को सर्वथा बदल देने से ही मनुष्य जाति का सुधार होगा। इस सभ्यता को बदलने के लिये आवश्यक है कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध के आदर्श को ही बदल दिया जाय। जहाँ पशु भाव से स्त्री-पुरुष का संग होगा वहाँ व्यभिचारी, डाकू और घातक सन्तान उत्पन्न होगी। जहाँ परमात्मा की पवित्र जनशक्ति को लक्ष्य में रखते हुए पितृ-ऋण से उऋण होने के लिये 'गर्भाधान संस्कार' होगा वहाँ धार्मिक, न्याय-परायण, परोपकारी सन्तान उत्पन्न होगी।

अभी तक योरोपियन सुधारकों की दृष्टि उच्च शिखर पर नहीं पहुंची जहाँ पहुँच कर प्राचीन आर्य ऋषियों ने मर्त्यलोक के निवासियों को उपदेश दिये थे। बृहदारण्यक उपनिषद् के आठवें अध्याय के चौथे ब्राह्मण में जो उत्तम दैवी सन्तान उत्पन्न करने की विधि बतलाई गई है उसे अमेरिका के सन्तान विद्या के जानने वाले डाक्टरों ने अब कहीं समझने की कोशिश आरम्भ की है।

हमारे नवशिक्षित इन नई Eugenies की पुस्तकों पर मोहित हो रहे हैं। इन पुस्तकों को पढ़ने से लाभ अवश्य है परन्तु इन्हें पढ़ते हुए सावधान अवश्य रहना चाहिए। यद्यपि दोनों प्राचीन आर्य तथा अर्वाचीन योरोपीय पद्धतियों का प्रकार एक ही है तथापि दोनों के लक्ष्य भिन्न-भिन्न हैं और इसलिए साधनों में गिर जाने की सम्भावना है। प्राचीन आर्य पद्धति के अनुसार ब्रह्मचर्य पालन धर्म है इसलिये सब अवस्थाओं में पालन करना ही चाहिए। गृहस्थ को 25 वर्षों में अधिक से अधिक दस बार ही सन्तानोत्पत्ति क्रिया करनी चाहिए परन्तु योरोपियन Eugenies में अधिक बार स्त्री-संग करना चाहिए निषिद्ध है कि स्त्री-पुरुष दोनों के शरीर निर्बल हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि अधिक संग से जिन स्त्री-पुरुषों में शारीरिक दुर्बलता न आवे उन्हें इस नियम के पालने की आवश्यकता नहीं। Problems of Sex नामी एक पुस्तक प्रोफेसर टायन और गौडीज ने लिखी है। ग्रन्थकर्त्ता लिखते हैं कि सब स्त्री-पुरुषों के लिए संग के एक से नियम नहीं हो सकते, क्योंकि किसी समय अभ्यासी खिलाड़ी से भी बढ़कर एक शारीरिक बल रखने वाला अशिक्षित मनुष्य व्यायाम दिखा सकता है। उन प्रोफेसरों ने परिणाम की ओर ध्यान नहीं दिया। यदि उनका कथन माना जाय तो जो जितना सहन कर सके उतना स्त्री-संग करे, परन्तु इसका सन्तान पर क्या प्रभाव पड़ेगा और दम्पती के भावी आत्माओं की क्या दशा होगी इसे नहीं सोचा।

सन्तान शुद्धि और उसके द्वारा मनुष्य जाति के पुनरुद्धार के काम में धर्म बड़ी सहायता दे सकता है, परन्तु इस समय सम्प्रदायों और मतों का बड़ा जोर है। पादरी मेयर साहब ने जातीय पुनरुद्धार पर मजहब का प्रभाव बतलाते हुए और ईसामसीह की श्रेष्ठता बतलाते हुए भी यह मान लिया है कि मजहब को कुछ आगे चलने की आवश्यकता है। वह लिखते हैं कि जैसे मजहब ने यह आज्ञा दी है कि अमुक-अमुक सम्बन्धियों के साथ विवाह नहीं करना चाहिए, वहाँ क्यों न वह (मजहब) आगे चले और यदि कहें कि -''किसी ऐसे व्यक्ति को विवाह न करना चाहिए जो किसी मानसिक वा शारीरिक रोग में ग्रस्त है या जो जानता है कि उसमें पागलपन वा मिर्गी का पैतृक

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

thearyasamaj.org

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)
शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका
(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–60 संवत्सर 2071 दिसम्बर 2014 अंक 11

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

दिसम्बर 2014

सृष्टि संवत्
1960853115

दयानन्दाब्दः 190

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेघाव्रत	5–8
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	9–12
दैवीय और आसुरी सम्पदा–	–डॉ0 सोमदेव शास्त्री	13–16
इस्लाम कैसे फैला	–प्रीतम अमृतसरी	17–20
मानव विकास तथा कर्मफल सिद्धान्त	–कृपालसिंह वर्मा	21
एक श्रेष्ठ पुस्तक! संक्षिप्त समीक्षा	–रामेन्द्रकुमार आर्य	22–25
सृष्टि–प्रलय–संवत्सरादि काल गणना	–महात्मा ओममुनि	26–29
अप्रिय अवस्थाओं से निकलने का मार्ग	–दयाचन्द्र गोयलीय	30–33

❋ ❋ ❋

वार्षिक शुल्क 150/ पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

thearyasamaj.org

वेदवाणी

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

हमारी गौएँ और ज्ञानेन्द्रियाँ सबल हों

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।

रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम।। –अथर्व0 3.14.6

शब्दार्थः–

(गावः) हे गौओ व ज्ञानेन्द्रियो! (मया गोपतिना) मुझ गोपति के साथ (सचध्वम्) संबद्ध रहो। (अयं वः गोष्ठः) यह तुम्हारी गोशाला है, (इह) यहाँ (पोषयिष्णुः) पोषक पदार्थ विद्यमान है। (रायस्पोषेण) ऐश्वर्य की पुष्टि से (बहुलाः भवन्तीः) संख्या में व गुण-क्रियाओं में बहुत होती हुई (जीवन्तीः वः) जीवित-जागृत रहती हुई तुम्हारी (जीवाः) जीवित-जागृत हम (उपसदेम) समीप बैठकर सेवा करते रहें।

भावार्थः–

मैं गौएँ पालता हूँ, इस कारण 'गोपति' कहलाता हूँ। हे गौओ! तुम मुझ गोपति के साथ संबद्ध रहो। कहीं ऐसा न हो कि तुम जंगल में चुगने जाओ और वहाँ शेर, भालू आदि कोई हिंसक प्राणी तुम्हें दबोच ले। कहीं ऐसा न हो कि चोर तुम्हें चुरा ले जाए। कहीं ऐसा न हो कि तुम किसी कसाई के हाथ पड़ जाओ। देखो, यह मैंने तुम्हारे लिए गोशाला बनायी हुई है, इसमें पोषक चरी, घास, दाना आदि सब विद्यमान हैं, तुम इसे खाकर परिपुष्ट होवो और पुष्कल दूध देती रहो। दूध दुहते समय मैं तुम्हारे बछड़े-बछिया का हिस्सा नहीं मारूँगा, वह उसके लिए ही छोड़ दूँगा। तुम्हारे अन्दर जो जीवनीशक्ति रूप धन है, उसकी पुष्टि होती रहे, इसका मैं ध्यान रख रहा हूँ, उस जीवन-धन की पुष्टि से तुम संख्या में बहुत हो जाओ। तुम्हारा दूध पीकर जीवित-जागृत होते हुए हम जीवित-जागृत रहती हुई तुम्हारी सदा सेवा करते रहें। तुम्हारे जो बछड़े होंगे, वे खेती के काम आयेंगे और जो बछिये होंगी वे गाय बनकर हमारी सेवा करेंगी, हम उनकी सेवा करेंगे।

हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ भी गौएँ हैं, जो हमारे शरीर-रूप गोष्ठ में आकर निवास कर रही हैं। चक्षु इन्द्रिय मेरी एक गाय है, श्रोत्र इन्द्रिय दूसरी गाय है, नासिकारूप इन्द्रिय तीसरी गाय है, रसनारूप इन्द्रिय चौथी गाय है, त्वचारूप इन्द्रिय पाँचवीं गाय है। मति (मनन-शक्ति) छठी गाय है, बुद्धि सातवीं गाय है। ज्ञानेन्द्रियाँ हमें ज्ञान का दूध देती हैं। चक्षु चाक्षुष ज्ञान का दूध देती हैं, श्रोत्र श्रवणज्ञान का दूध देते हैं, नासिका गन्धज्ञान का दूध देती है, रसना स्वादज्ञान का दूध देती है, त्वचा स्पर्शज्ञान का दूध देती है। मतिरूप गाय मनन-चिन्तन एवं संकल्प का दूध देती है। बुद्धिरूप गाय बोध या विवेक का दूध देती है। हे मेरे शरीररूप गोष्ठ में निवास करने वाली ज्ञानेन्द्रियरूप गौओ! तुम जीवनपर्यन्त मेरे साथ बनी रहो, अपना-अपना ज्ञानरूप दूध देती रहो। मैं तुम्हें परिपुष्ट करने के लिए पोषक भोजन देता रहूँगा। पोषक भोजन से तुम बहुत होती रहो, बलवती होती चलो। मेरे बुढ़ापे में भी तुम्हारी शक्ति क्षीण न हो। अन्तिम श्वास तक मेरी आँखें, मेरे श्रोत्र, मेरी नासिका, मेरी रसना, मेरी त्वचा, मेरी मति, मेरी बुद्धि सजीव रहे। मैं भी शरीर और आत्मा से जीवित-जागृत रहता हुआ तुम जीवित-जागृत ज्ञानेन्द्रियों की सेवा करता रहूँ। ❁❁❁

thearyasamaj.org

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

एकादशः सर्गः

पूर्वस्मिन् समये हिताय जगतां मृत्युंजयस्याश्रमाद् दिव्यागस्त्यमहामुने रघुकुलालंकारचूडामणिः।
दिव्यास्त्रैस्समलंकृतो निरगमत् संग्रामपंचाननोरक्षः कंजरपुंजमर्दनपटुः श्रीमैथिलीशो यथा॥ 1॥

जैसे प्राचीन काल में मृत्युंजय दिव्य महामुनि अगस्त्य के आश्रम से रघुकुलरूपी अलंकार के रत्नसमान, संग्राम में पंचानन, राक्षसरूपी हाथियों के समूह को मर्दन करने में चतुर, मैथिलीपति रामचन्द्रजी दिव्यास्त्रों से अलंकृत होकर जगत्-कल्याण के लिये निकले थे, वैसे ही-॥ 1॥

नानाशास्त्ररहस्यशस्त्रनिचयप्रालंकृतात्मा व्रती सत्योरश्छदवान् सुधर्मसुशिरस्त्राणो दिनेन्द्रप्रभः।
विश्वव्याप्तमतान्तराघतिमिरच्छेदाय तीर्थालयाच्छास्त्रार्थप्रधनांगणं प्रमुदितः सम्प्राप्तवानात्मवान्॥ 2॥

सूर्य के समान तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी, आत्मवान् ब्रह्मचारी दयानन्द अनेक शास्त्रों के रहस्यरूप शस्त्र-सामग्रियों से सुसज्जित, सत्यरूपी कवच को धारण कर, शिर पर धर्म का शिरस्त्राण पहनकर, प्रसन्नता से विश्व में फैले हुए अनेक मतमतान्तररूपी पापान्धकार के नाश के लिये गुरुगृह से निकलकर शास्त्रार्थरूपी रणांगण में आ गये॥ 2॥

यदुकुलमणिसूक्त्युत्साहितस्यार्जुनस्य प्रतिधमनि यथोष्णं शोणितं शूरतायाः।
अवहदृषिशरीरे तीर्थवाग्विद्युतां सा ततिरतिरयशीला प्राणसंचारिणी द्राक्॥ 3॥

जैसे यदुकुलमणि श्रीकृष्णचन्द्रजी के उपदेशामृत से उत्साहित अर्जुन की नस-नस में वीरता का उष्ण शोणित बहता था, वैसे ही गुरुवर विरजानन्द जी की प्राणसंचारिणी वाणीरूप विद्युत् से ऋषि दयानन्द की धमनियों में आर्यजाति के उद्धार का गरम रुधिर बहने लगा॥ 3॥

वैरानलेर्ष्योत्कटधूममालानिरुद्धनिश्वासनिमीलिताक्षे।
अवर्णकर्णेजपताकलंकप्रचण्डधूलौ चललोभवायौ॥ 4॥

वैराग्नि से उत्पन्न ईर्ष्या की उत्कट धूममाला के कारण दम घोटने वाले एवं आँखों को बन्द कर देनेवाले, निन्दा चुगलखोरीरूपी कलंक की प्रचंड धूलि से व्याप्त, लोभरूपी झंझावत से चलायमान, स्वार्थियों एवं दम्भियों के मठाधीशों से रचे गये मतमतान्तरों के भयंकर युद्ध में, धीर वीर दयानन्द वैदिक धर्म के उद्धार के लिये प्रवीण सेनापति की तरह डटे रहे॥ 4॥

स्वार्थानदम्भीश्वरकल्पितानां मतान्तराणां विकरालजन्ये।
वेदोक्तधर्मोद्धरणाय धीरः॥ 5॥

thearyasamaj.org

मनुष्यकल्याणमहासमीहा श्रेयोर्थविद्येति स वारुणास्त्रे।
आदाय दिव्ये मतसम्प्रहारे मिथ्यामताग्निं शमितुं प्रतस्थे।। 6।।

स्वामीजी उस धर्म युद्ध में मनुष्यकल्याण की महती कामना एवं कल्याणकारिणी वैदिक ब्रह्म विद्यारूपी दो वरुणास्त्रों को लेकर इस मिथ्यामत रूपी अग्नि का शमन करने के लिये उपस्थित हुए।। 6।।

कालिन्दीपुलिनान्तिकेऽर्गलपुरे श्रीरूपचन्द्रात्मजश्रेष्ठ्युद्यानकृतातिथीन्द्रनिलये स्वामी वसन्त्सुन्दरे।
श्रद्धालून् रचयंजनान् सहृदयान् स्वीयोपदेशामृतैःकैलासादियतीनपि स्वचरितैः कीर्तिं वितेनेऽमलाम्।। 7।।

इस कार्य के लिये सब से पहले स्वामीजी आगे आये। यहाँ यमुना के किनारे सेठ रूपचंद के बाग में एक सुन्दर अतिथि भवन इनके लिये बना दिया गया था। उसी में स्वामीजी रहने लगे थे। श्रद्धालु सहृदयों को वे उसी बाग में उपदेशामृत पान कराने लगे। स्वामीजी के सुन्दर चरित्र और उपदेश से श्री कैलासस्वामी आदि भी प्रभावित हो गये, इसलिये स्वामीजी की कीर्ति अत्यन्त फैल गई।। 7।।

अपूर्वगीतार्थविधानशैलीं रसान्वितां सारमयीं मनोज्ञाम्।
श्रुत्वा दयानन्दमुनेः प्रमुगधा स्निग्धा प्रसन्ना जनतापि विज्ञा।। 8।।

स्वामीजी उन दिनों गीता की कथा किया करते थे। स्वामीजी की गीतार्थ करने की शैली बड़ी मनोहर, सारयुक्त और रसीली थी। विद्वान् लोग भी स्वामीजी की अर्थशैली पर मुग्ध हो गये थे, इसलिये इन पर खूब स्नेह रखने लगे।। 8।।

श्रीमान् सुन्दरलालसज्जनवरो धर्मात्मभक्तो यतेः सत्रा मित्रयुगेन दर्शनकृते धर्मोपदेशश्रुतेः।
गीतां व्याकरणं रसेन पठितुं नित्यं ययावानतः सत्संगे सुवचोऽमृतस्य च रुचिः पाने भवेत्कस्य नो।। 9।।

इस नगर में स्वामीजी के सुन्दरलाल नामक एक व्यक्ति बड़े ही भक्त थे, जो सज्जन और धर्मात्मा थे। ये दो मित्रों के साथ प्रतिदिन नियमपूर्वक स्वामीजी के दर्शन एवं धर्मोपदेश को सुनने के लिये आया करते थे और बड़ी नम्रता और भक्तिपूर्वक व्याकरण, गीता आदि ग्रन्थ पढ़ा करते थे। सत्संगति और सुवचनामृतपान में भला किसकी रुचि न होगी?।। 9।।

योगक्रियामुदरमस्तकशुद्धिहेतोः संशिक्ष्य तं गदविमुक्तमयं व्यधत्त।
देहात्ममानससविकारनिराकरिष्णुर्जिषु नृणां नु निपुणो भिषगेव सोऽभूत्।। 10।।

सुन्दरलालजी के उदर में एक रोग था। उनको उन्होंने नेति, धोति आदि क्रियायें सिखाकर उन्हें रोगमुक्त कर दिया था। भला जो मनुष्यों के आत्मा और मन के विकारों को दूर करने में समर्थ हो, वह मनुष्यों के शारीरिक रोगों को दूर करने में क्यों नहीं समर्थ होगा?।। 10।।

सायं सदा पण्डितमण्डलीभिर्ग्रन्थान्तरालोचनमेष तेने।
अखण्डयद् भागवतादिमिथ्याग्रन्थानृतज्ञो मुनिरागमज्ञः।। 11।।

वेदशास्त्र के पारंगत तथा सत्य तत्व के विज्ञाता दयानन्दजी प्रतिदिन सायंकाल पण्डितमण्डली के साथ अनेकों ग्रन्थों की आलोचना किया करते थे और भागवत आदि पुराणों की मिथ्या बताकर खंडन किया करते थे।। 11।।

thearyasamaj.org

ऋग्वेदमंत्रार्थविचामार्षप्रज्ञानशैल्याऽकृत योगिराजः।
सन्ध्ये समाधौ प्रहत्रयं स कदाचिदस्थान्नियमेन चोभे।। 12।।

उन्हीं दिनों योगीश्वर दयानन्द आर्षशैली के अनुकूल ऋग्वेद की ऋचाओं पर विचार किया करते थे। कभी-कभी दोनों समय तीन-तीन पहर तक समाधि में लीन रहा करते थे।। 12।।

वेदार्थशंकां गुरुदेवपार्श्वं गत्वा निरास्थद्दलतश्च जातु।
गूढ़ार्थतत्त्वावगमप्रभूतप्रभूतहर्षोऽस्य कथं नु वर्ण्यः।। 13।।

जब-जब इन्हें वेदार्थ करने मे शंका होती थी, तब-तब कभी पत्र द्वारा और कभी स्वयं ही उपस्थित होकर गुरुवर विरजानन्द से गूढार्थ जान लिया करते थे। पश्चात् उन्हें जो आनन्द होता था, उसे क्योंकर वर्णन किया जा सकता है।। 13।।

अथैकदा ध्याननिमीलिताम्बकः प्रभातकाले प्रभुभक्तपुंगवः।
कलिन्दकन्यातटकान्तकानने निबद्धपदमासनतो निषेदिवान्।। 14।।

एकबार प्रभुभक्त शिरोमणि स्वामीजी यमुना नदी के सुन्दर तटवर्ती वन में उषाकाल में पदमासन लगाकर समाधि में बैठे थे।। 14।।

तदा कल्ये पूर्वं रविकररुचि र्व्योमसरसि ततानां मुक्तानां रुचिरसरशोभामकलयत्।
शनैः पश्चात् सेयं विविधमणिवर्णाचिंततनुः प्रभां रंगावल्या अजनयदर्हाग्पुरतः।। 15।।

उषादेवी के प्रस्थान के समय व्योम-सरोवर में सूर्य की प्रथम किरण की कान्ति ने फैली हुई मोतियों की मालाओं की शोभा को धारण किया, और धीरे-धीरे उस कान्ति ने आगे बढ़कर दिवसरूपी द्वार के आगे अनेक रत्नों के वर्णों से रंजित स्वस्तिक सर्वतोभ्रदादि मंगलकारक रंगावलियों से मनोहर शोभा की वृद्धि की।। 15।।

उषादेवी कान्तं कनककलशं पाणिकमले समादायायासीन्वरुणकिरणं कुंकुमभृतम्।
अनिन्द्या कालिन्द्या विमलजलवारे रुचिकरे विधातुं सा लीलां मधुरजलदेव्याऽणरुचा।। 16।।

संध्यादेवी अनिन्द्य कान्ति धारण कर अपने कर कमलों में लाल किरणरूप कुंकुम से भरे सूर्यरूपी स्वर्णकलश को लेकर मनोहर कालिन्दी के निर्मल जल में आ उपस्थित हुई, और लाल किरणों से रंजित जलदेवी के साथ क्रीड़ा करने लगी।। 16।।

सन्ध्यादेव्यास्स्वागतं कर्त्तुमायात् सा रम्योषा हर्षिताम्भोजहस्ता।
व्योमक्षौमं संवसाना दिनादौ प्राच्यां मन्ये कुंकुमक्षोदशोणम्।। 17।।

सुन्दरी उषादेवी पूर्व दिशा में कुंकुम जैसी लाल आकाशरूपी साड़ी पहन कर हाथों में विकसित कमल एवं पुष्पमाला लेकर मानो प्रातःकालीन संध्यादेवी का स्वागत करने के लिये उपस्थित न हुई हो।। 17।।

कीर्णं स्वकुंकमरजो दिनराजकुंभादादाय वासरमुखे ह्युषसाऽग्रलक्ष्म्या।
संपत्य वारिणि सहस्त्रमरीचिपुत्र्यानूनं तदेव नभसो रुचिरं विरेजे।। 18।।

अवर्णनीय कान्तिशालिनी उषादेवी ने सूर्यरूपी घट में से लाल किरणरूपी अवीर गुलाल लेकर

thearyasamaj.org

दिन के वदन पर उड़ाया। मानो वही उड़ाया हुआ गुलाल सूर्य की पुत्री यमुना के जल में चमक रहा था॥ 18॥

अम्भोजिनीशकिरणैरभवत्प्रफुल्लं नेत्रारविन्दयुगलं मुनिमण्डनस्य।
प्राभातिकीं स सुषमां हृदयंगमां तां दृष्ट्वा नुनाव विभुवेदगिरः क्रमेण॥ 19॥

कमलिनी–कान्त प्रभाकर की किरणों से मुनियों में अलंकार रूप दयानन्द के नेत्रारविन्द खिल गये। अर्थात् मुख पर सूर्य किरण पड़ते ही उनकी समाधि खुल गई और प्रभातकालीन मनोहर सृष्टि–सौन्दर्य देखकर स्वामीजी क्रम से ईश्वर, वेद तथा सरस्वती की स्तुति करने लगे॥ 19॥

आविर्भूतं भवति भुवने वाङ्मयं ज्योतिरेकं भूयो भूयो यदतुलमलं ब्रह्मणः सर्गकालम्।
दिव्यं देव्यां सुरगिरि यतस्तं गिरामिन्द्रमेनं तत्तज्ज्योति र्गिरमपि तथा तां ववन्दे मुनीन्द्रः॥ 20॥

संसार में सृष्टि के प्रत्येक प्रारम्भ काल में जिस ब्रह्म से अमल, अतुल एवं दिव्य वाङ्मय ज्योति, देववाणी में प्रकट हुआ करती है, उस वाणी के स्वामी, गुरुओं के गुरु, ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म का, वेद एवं सरस्वती का मुनीन्द्र ने इस प्रकार वन्दन किया॥ 20॥

अणीयसे ते जगदीश्वराय महीयसेऽनन्तगुणालयाय।
विश्वमम्भरायाघविनाशकाय देवाय चार्हाय नमोऽनिशं मे॥ 21॥

हे जगदीश्वर! तुम अणु से अणु और महान् से महान् हो। तुम ही अनन्त गुणों के भण्डार हो। आप संसार का पालन पोषण करनेवाले हो। तुम ही पाप के विनाशक हो, इसलिये पूजनीय परमदेव, आपको मेरा वारंबार नमस्कार है॥ 21॥

दयायास्त्वं सिन्धु र्निखिलजनबन्धु र्गुणनिधे! दयावृष्टेस्सृष्टिं कृतसकलसृष्टि र्वितनुषे।
अनन्ता ते शक्ति र्मम मनसि भक्तिर्दृढतमा पितर्ब्रह्मानन्द त्वमेव शरणं मामशरणम्॥ 22॥

हे गुणनिधे प्रभो आप दया के सागर, चराचर के बन्धु, दया के मेघ एवं संसार के रचयिता हो। हे वरमते पिता, ब्रह्मानन्दप्रदाता, आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। इसलिये आप में मेरी दृढ़ भक्ति है। आप मुझ अशरण प्रदान करके रक्षा कीजिये॥ 22॥

त्वयैतद् ब्रह्माण्डं विरचितमहो सर्वममितं यदन्तर्बाह्यस्त्वं विभुवर परब्रह्मविमलम्।
प्रभो सर्वव्यापिन्नतुलबलशालिनं जनिमतां सतां स्वामिन् पाहि स्वशरणगतं मामशरणम्॥ 23॥

भगवन्! आप सारे ब्रह्माण्डों की रचना करके उन सबके अन्दर और बाहर व्याप्त हो। अतः हे अनन्त बलशालिन् सर्वान्तर्यामिन् स्वामिन्! आपके शरणापन्न इस जन की आप रक्षा करें॥ 23॥

दिवा भास्वान् सूर्यो दिवि निशि निशेशो भगवता प्रकाशार्थं दीपाविव सकललोकस्य रचितौ।
अनन्तस्यानन्तोऽतुलमहिमशक्तेश्च महिमा विचित्रो येनेमौ परमपुरुषेणेह रुचिरौ॥ 24॥

हे देव! आपने दिन में सूर्य और रात में चन्द्रमा को चराचर के प्रकाश के लिये महान् दीपक के समान बताया है। आप की महिमा अतुल तथा अद्भुत है॥ 24॥

–(शेष अगले अंक में)

thearyasamaj.org

योगेश्वर कृष्ण

महाभारत का युद्ध-प्रकार

लेखकः पं. चमूपति

पिछले परिच्छेदों में हमने महाभारत के युद्ध की उन्हीं घटनाओं का वर्णन किया है जिनसे श्रीकृष्ण का विशेष सम्बन्ध है। इससे साधारणतया युद्ध की सभी मुख्य घटनाओं पर स्वतः ही प्रकाश पड़ गया है। कृष्ण पाण्डव-पक्ष के कर्णधार थे। समस्त युद्ध की नीति का निश्चय यही कर रहे थे। फिर मुख्य योद्धा के सारथि होने से युद्ध की सभी प्रधान घटनाओं में इनका क्रियात्मक रूप से भी हाथ था। यह सब कुछ होने पर भी युद्ध की सामान्य प्रणाली पर हमने अब तक प्रकाश नहीं डाला है। प्रत्येक पक्ष में कितने योद्धा थे? उनकी युद्धसामग्री क्या थी? समर-भूमि को युद्ध के लिए कैसे तैयार किया गया? सैनिकों को व्यूहों में कैसे बाँटा गया? युद्ध के नियम क्या निश्चित हुए? इन बातों का युद्ध के मुख्य नायक के जीवन से सम्बन्ध तो है ही, उस समय की युद्ध-नीति पर भी इन बातों के वर्णन से विशेष प्रकाश पड़ेगा। कृष्ण महाभारत-काल के प्रमुख योद्धा तथा नीतिज्ञ थे। वे किस परिस्थिति में पैदा हुए और उसमें उन्होंने अपना कृत्य किस प्रकार निभाया? ये प्रश्न श्री कृष्ण की जीवनी में उठाए जाने के लिए केवल प्रासंगिक ही नहीं, स्वाभाविक भी हैं।

युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ था, वह बात तो सभी जानते हैं। उसमें पाँच योजन स्थान लड़ने के लिए छोड़कर पश्चिम की ओर पाण्डवों ने डेरा किया और पूर्व की ओर कौरवों ने। युधिष्ठिर ने सम, स्निग्ध, लकड़ी और घास से परिपूर्ण भूमि अपने शिविर के लिए चुनी। श्मशान, देव-मन्दिर, ऋषियों के आश्रम और तीर्थ छोड़ दिये गये। उन दिनों युद्ध में इन स्थानों को छोड़ देने का नियम ही था। राजा शाल्व ने भी द्वारका पर चढ़ाई करते समय इस नियम का पालन किया था। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को साथ लेकर सारी भूमि का चक्कर लगाया। धृष्टद्युम्न और सात्यकि ने सारी छावनी को मापा। हिरण्वती नदी के किनारे घाट आदि बनवाकर सेना का आवास कराया गया। श्रीकृष्ण ने वहाँ परिखा खुदवाकर एक गुप्त सेना आवश्यकता के अवसर के लिए सुरक्षित करा दी। प्रत्येक राजा की छावनी अलग-अलग थी। श्री कृष्ण सबको लकड़ी, भोज्य, पेय आदि सब दिलवा रहे थे। चतुर शिल्पी और वैद्य उपकरणों-सहित नियत किये गए। युद्ध की सब सामग्री पर्याप्त राशि में हरेक के पास पहुँचाई गई। हाथी कवच पहने लोहे के पहाड़-से प्रतीत हो रहे थे। शस्त्र फेंकने के बड़े-बड़े यन्त्र विद्यमान थे।

यही अवस्था कौरवों की छावनी की थी। लिखा है-दुर्योधन ने समर-भूमि में एक नया हस्तिनापुर बसा लिया था। दोनों पक्षों के राजा अपने पूरे परिवारों-सहित आए थे। कोष, रत्न, धन, धान्य सब

thearyasamaj.org

उपस्थित था। वणिक्, शिल्पी, यहाँ तक कि वेश्याएँ और तमाशा दिखानेवाले सभी प्रकार के लोग युद्ध-क्षेत्र में आए थे और सबके आवास दुर्योधन ने स्वयं जाकर देखे।

युधिष्ठिर ने अलग-अलग संज्ञाएँ निश्चित कर सबको बता दिया कि इन संकेतों को कहनेवाला स्वपक्षीय समझा जाएगा। प्रमुख लड़ैतों की पहचान उनके रथ, घोड़ों के रंग, ध्वजा, शंख की ध्वनि आदि से होती थी। भीष्म का छत्र, कमान, घोड़े और ध्वजा सभी श्वेत थे। द्रोण के घोड़े लाल रंग के थे। युधिष्ठिर का छत्र-दण्ड हाथी-दाँत का और रथ सोने का था। उस पर रत्न जड़े हुए थे।

कौरवों की सेना में 11 अक्षौहिणियाँ और पाण्डवों की सेना में सात अक्षौहिणियाँ थीं। उद्योगपर्व के 154वें अध्याय में इनकी संख्या कई प्रकार से दी गई है। 22वें श्लोक में एक रथ के साथ 10 हाथी, 100 घोड़े, 1000 पुरुष-ऐसी गणना दी गई है। परन्तु 23वें श्लोक में एक रथ के साथ 50 हाथी, 5000 घोड़े, 35000 मनुष्य गिनाए गए हैं। 24वें श्लोक में एक सेना में 105 हाथी और उतने ही रथ गिनाकर दस सेनाओं की एक-एक पृतना और दस पृतनाओं की एक वाहिनी कही गई है। परन्तु 25वें श्लोक में लिखा है-सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू और अक्षौहिणी पर्यायवाची हैं। प्रतीत यह होता है कि उस समय भी सेना के विविध प्रकार के विभाग होते थे। कौरव-दल के 11 विभाग थे।और पाण्डव-दल के 7 सम्भव है, भिन्न-भिन्न विभागों की संख्या भिन्न-भिन्न रही हो। छोटे-से-छोटा विभाग 10 रथों, 105 हाथियों, 1050 घोड़ों और 10500 पुरुषों का रहा होगा। बड़े विभागों में 10500 हाथी और उतने ही रथ होंगे। सम्भव है, इस प्रकार के विभागों में पैदल और घुड़सवार न रहे हों।

लड़ाई के नियम ये निश्चित हुए-

(1) विहित युद्ध-काल की समाप्ति पर आपस में प्रीति हो जाया करेगी। फिर एक-दूसरे को छला न जाएगा।

(2) वाणी से युद्ध करनेवालों (तमाशा दिखानेवालों, केवल शब्दों में ही किसी दल का पक्ष लेनेवालों) से वाणी से ही युद्ध होगा। लड़ाई से बाहर रहनेवालों का वध न किया जाएगा।

(3) रथी रथी से लड़ेगा, हाथी-चढ़ा हाथी-चढ़े से, घुड़सवार घुड़सवार से और पैदल पैदल से।

(4) व्याकुल तथा जिसे विश्वास दिलाया गया हो, उस पर प्रहार नहीं किया जाएगा।

(5) किसी के साथ लड़ रहे, लड़ाई से विमुख, शस्त्र-रहित तथा कवचहीन का वध न किया जाएगा।

(6) सूतों, धुरी पर खड़े हुओं, शस्त्र-निर्माताओं, भेरी तथा शंख बजानेवालों पर प्रहार न किया जाएगा।

कई प्रकार के शस्त्र ऐसे थे जिनका प्रयोग धर्म-युद्ध में नहीं होता था, यथा-बहुत छोटा तीर (नालीक) जिसके शरीर में ही रह जाने का भय था; दो उलटे काँटों से संयुक्त बाण जो शरीर के अन्दर घुसा हुआ बड़े कष्ट से बाहर निकल सकता था (कर्णी); विषलिप्त बाण; गौ तथा हाथी की हड्डी का बाण, संश्लिष्ट अर्थात् ऐसा बाण जिसके कई भाग हों और एक भाग दूसरे भाग से ढीला जुड़ा हो; सड़ा हुआ बाण; टेढ़ा चलनेवाला बाण। आजकल के युद्ध में भी विषैली गैसों तथा फैल जानेवाली गोलियों का

thearyasamaj.org

प्रयोग निसिद्ध है। इन नियमों का पालन उसी समय हो सकता है जब दोनों पक्ष सुसभ्य हों और दोनों इन नियमों पर आचरण करें। इस समय भी आजकल की परिस्थितियों के अनुसार युद्ध के नियम बने हुए हैं, परन्तु इनके पालन न होने की शिकायत रहती है। यही अवस्था महाभारत के युद्ध की थी। कई प्रकार के निषिद्ध शस्त्रों का प्रयोग किया गया। 'ऋजु युद्ध' अर्जुन ही के हिस्से आया। इसके कष्ट सब अनुभव करते रहे।

सेनाओं की रचना व्यूहों में की जाती थी। महाभारत के युद्ध में इन व्यूहों का प्रयोग हुआ था–

सर्वतोमुख, वज्र अथवा सूचीमुख, महाव्यूह, क्रौंच, गरुड़, अर्धचन्द्र, मकर, श्येन, मण्डल, शृंगाटक, सर्वतोभद्र, चक्र, सचक्र, शकट।

इन व्यूहों के भाग तुण्ड, मुख, नेत्र, पक्ष या पार्श्व, पृष्ठ, सेनाजघन थे। शृंगाटक व्यूह के शृंगादि भाग थे। प्रत्येक भाग में एक अथवा अनेक मुख्य योद्धा उचित दलों–समेत नियुक्त किये जाते थे। वज्र–व्यूह के सम्बन्ध में लिखा है कि इस व्यूह–द्वारा छोटी सेना बड़ी सेना को हरा लेती थी। मण्डल–व्यूह सातवें दिन के युद्ध में पाण्डवों ने रचा था। उसमें एक–एक हाथी के साथ सात–सात रथ थे। एक–एक रथ के साथ सात–सात घोड़े, एक–एक घोड़े के साथ सात–सात धनुर्धर और एक–एक धनुर्धर के साथ सात–सात चारी थे। सचक्र शकट दोहरा व्यूह प्रतीत होता है। इसका दूसरा नाम सूचीपदम दिया गया है। इस व्यूह के बीच में एक और व्यूह था जिसे गर्भ–व्यूह कहते थे। गर्भ–व्यूह के अंदर गूढ़व्यूह नाम का तीसरा व्यूह था। इन व्यूहों की रचना किस प्रकार होती थी, इसका वर्णन कहीं नहीं किया गया। प्रत्येक व्यूह के नाम से उसके आकार का कुछ–कुछ अनुमान होता है। विविध पक्षियों के आकार में कुछ अवान्तर भेद होते होंगे, जिनका पता लगाना इस समय असम्भव है। सचक्र शकट व्यूह का परिमाण वारह गव्यूति लिखकर उसके पीछे का विस्तार पाँच गव्यूति बताया गया है। यह व्यूह और सब व्यूहों से बड़ा था। जयद्रथ की रक्षा के लिए द्रोण ने इसकी रचना विशेष चतुराई से की थी। इसके आगे चक्र था और पीछे शकट।

लड़ाई दो प्रकार से होती थी–एक द्वन्द्व–युद्ध, दूसरा संकुल युद्ध। द्वन्द्व में एक वीर के सम्मुख एक ही वीर होता था। संकुल में सेनाएँ लड़ती थीं। महाभारत–युद्ध के वृत्तान्त के पढ़ने से पता लगता है कि द्वन्द्व और संकुल दोनों प्रकार के युद्ध साथ–साथ चलते रहते थे। मुख्य योद्धा एक–एक रहते भी उनकी सहायता को दोनों पक्षों से अनेक वीर आ उपस्थित होते थे। संकट के समय अपने साथी को बचाना तथा किसी अन्य आवश्यकता के अवसर पर उसके आड़े आना सर्वथा विहित था। भीष्म से शिखण्डी लड़ रहा था, परन्तु उसे सब तरह की सहायता अर्जुन देता जाता था। यही बात दूसरे पक्ष के योद्धा भी कर रहे थे। अभिमन्यु पर छः महारथियों का वार अवैध इसलिए समझा गया कि वह अकेला और निःशस्त्र था।

द्वन्द्व–युद्ध द्वारा किसी राजनैतिक झगड़े का निर्णय करने का रिवाज भी उस समय प्रचलित था। जरासन्ध और भीम के द्वन्द्व–युद्ध ने भारत की एक बड़ी राजनैतिक समस्या का अन्त कर दिया। महाभारत के युद्ध की समाप्ति भी हुई तो दुर्योधन और भीम के द्वन्द्व–युद्ध पर ही, परन्तु इस विधि का अवलम्बन दुर्योधन ने तब किया जब और सब विधियाँ असफल रहीं। पाण्डवों की प्राप्त की हुई विजय को सन्देह में डालकर दुर्योधन ने कुछ समय तो श्री कृष्ण जैसे स्थितप्रज्ञ को भी चिन्तित कर दिया।

युद्ध की मुख्य सामग्री हाथी, घोड़े, रथ, बाण और धनुष थे। गजसूत्र अर्थात् हाथियों की विद्या

thearyasamaj.org

का अभ्यास क्षत्रिय लोग करते थे। प्राग्ज्योतिष् का भगदत्त और अवन्ति के विन्द और अनुविन्द हाथियों का एक बड़ा समूह साथ लाए थे। मनुष्य की तरह हाथियों को भी कवच पहनाए जाते थे। इनका प्रहार भयंकर होता था। परन्तु भीम-सदृश कई वीर पैदल और बिना शस्त्र के हाथियों को व्याकुल कर देने में प्रवीण थे। हाथी के नीचे जाकर गदा-द्वारा उसकी गत बनाना, यह इन वीरों के लिए बाएँ हाथ का खेल था। हाथियों के सिर पर खोद भी रहता था।

रथ दो पहिये के होते थे। प्रत्येक रथ में चार घोड़े जुता करते थे। रथ के बीच में योद्धा और उसके आगे सारथि बैठता था। प्रवीण रथी-सारथि-विद्या का भी धनी होता था। श्री कृष्ण और शल्य इस विद्या के उस्ताद माने गए। सात्यकि और दु:शासन ने भी संकट-समय में इस विद्या के जौहर दिखाए। रथ को घुमाना, उसे तेज-तेज चक्कर देकर तथा नीचे-ऊपर उतार-चढ़ाव देकर सारथि रथी को बचाता भी था और उसकी युद्ध में सहायता भी करता था। रथी थोड़े-से शस्त्र तो इसी रथ में रख लेता होगा, परन्तु शस्त्रों का भंडार बड़े-बड़े रथों में उसके साथ रहता था। जिस दिन कर्ण कौरव-सेना का सेनापतित्व कर रहा था, अश्वत्थामा शास्त्रास्त्र के साथ रथ अपने साथ ले गया था। भीम के राक्षस-पुत्र घटोत्कच के रथ का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

फौलाद का अत्यन्त घोर, रीछ के चमड़े से मढ़ा हुआ बड़ा 30 नल्व लम्बा..... आठ चक्रों वाला विशाल रथ जिसका झण्डा ऊपर उठा हुआ था। झण्डे पर बड़े गिद्ध का चित्र था, लहू से सना हुआ; अंतड़ियों की माला से सुशोभित था। (द्रोण0 156, 56-60)

ऐसा ही वृत्तान्त अलम्बुष के रथ का मिलता है। (द्रोण0 168, 17)

रथ के निम्नलिखित अंग होते थे-

चक्र, ईषा, पूग, अक्ष, कूबर, अनुकर्ष आदि। (द्रोण0 146, 34)

युद्ध के शस्त्र ये थे-

क्षेपणी- अर्थात् गोपियाँ जिसमें पत्थर रखकर फेंकते थे। शस्त्रों में आयस के गुड़ों का नाम भी आता है। गुड़ का अर्थ है गोली। इस गोली के फेंकने के लिए किस मशीन का प्रयोग होता था, यह नहीं लिखा। सम्भव है, क्षेपणी से यह काम भी लेते हों।

गदा- इस पर सोने के या सुनहरी (जाम्बूनदमय) पट्ट होते थे।

शक्ति- लोहे का बना कचनार की शक्ल के मुखवाला नीचे से गोस्तनाकार चार हाथ लम्बा हथियार।

प्रास- दो हत्थों वाला ठोस लोहे का या अन्दर से लकड़ी का और ऊपर लोहे से मढ़ा चौबीस अंगुल का हथियार। (भीष्मपर्व 76, 14)

असि- पतली लम्बी तलवार।

ऋष्टि- दुधारी तलवार।

तोमर- चार-साढ़े चार या पाँच हाथ का, तीर की तरह तेज नोंकदार हथियार। इस हथियार को आयस अर्थात् लोहे का लिखा है।

-(शेष अगले अंक में)

thearyasamaj.org

दैवीय और आसुरी सम्पदा

लेखकः डॉ० सोमदेव शास्त्री, मुम्बई

अच्छे बुरे दो प्रकार के मनुष्यः—

संसार में दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं अच्छे और बुरे। वेद में इन्द्र और वृत्त का वर्णन तथा प्राचीन ग्रन्थों में अच्छे लोगों को 'आर्य' तथा बुरे लोगों को अनार्य या दस्यु कहा गया है। इन्हीं के लिये देव और असुर शब्द का प्रयोग हुआ है। पुराणों में इनके संघर्ष के लिये 'देवासुर' संग्राम का वर्णन मिलता है। ईसाइयों में खुदा तथा शैतान के नाम से उल्लेख पाया जाता है तथा पारसी धर्म में अहुरमज्द तथा अहरिमान, इस्लाम में अल्लाह और इब्लीस के संघर्ष का वर्णन आता है। मनुष्य में अच्छे और बुरे विचार आते हैं। मस्तिष्क में विचार गत संघर्ष होता रहता है। इसी को देवासुर संग्राम कह सकते हैं। गीता के इस अध्याय में इन्हीं दो परस्पर विरोधी प्रकृतियों का वर्णन किया है।

दैवीय सम्पदाः—

अध्याय के प्रारम्भ में 'दैवी सम्पदा' किन लोगों के पास होती है, इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'हे अर्जुन! निर्भयता अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञान, योग में निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दूसरों में द्वेष न ढूंढ़ना, प्राणियों पर दया, लोभ न होना, स्वभाव में कोमलता, लज्जाशीलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्वेष न होना, अत्यन्त अभिमान न होना ये उस व्यक्ति के गुण हैं जो दैवी सम्पद् लेकर जन्म लेता है। मनुष्य जब अपने आपको प्रकृति या प्राकृतिक विषय वासनाओं से अलग करके परमात्मा के साथ जोड़ लेता है तो उसके जीवन में कुछ गुण आ जाते हैं। जैसे लोहे को अग्नि में डालने से लोहे में भी अग्नि का गुण (दाहकता—ज्वलनशीलता) आ जाता है। इसी प्रकार परमेश्वर की उपासना करनेवाले उपासक में ईश्वरीय गुण आ जाते हैं, उन्हीं गुणों को गीताकार ने 'दैवी सम्पदा' कहा है। यही ईश्वरीय सम्पदा या सम्पत्ति है। ईश्वर की भक्ति से मनुष्य को क्या प्राप्त होता है? उसका सुन्दर उत्तर गीताकार ने इन श्लोकों में दिया है कि ईश्वर की पूजा, उपासना, भक्ति से निर्भयतादि 26 गुण प्राप्त होते हैं, जो संसार में धन से नहीं प्राप्त हो सकते हैं।

आसुरी सम्पदाः—

जो मनुष्य इस संसार में ईश्वर की भक्ति नहीं करता है, जिसने अपना सम्बन्ध प्रकृति या उसने बनाये हुए संसार के साथ ही जोड़ रखा है, जिसने आत्मा और शरीर की पृथक्ता का अनुभव नहीं किया और विषय वासना से युक्त भौतिक सुख सुविधाओं को ही सब कुछ समझ करके उन्हीं के लिये प्रयत्न कर रहा है, उसका जीवन कैसा होता है? इस विषय में गीता में लिखा है कि श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं 'हे अर्जुन! **दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, दारुण्य, अज्ञान** ये उस व्यक्ति के दुर्गुण हैं, जो **आंसुरी सम्पदा** को

thearyasamaj.org

लेकर जन्म लेता है। भौतिकवादी के जीवन में कदम-कदम पर थोड़ी सी भौतिक सम्पत्ति प्राप्त होने पर घमण्ड, अहंकार, अभिमानादि दुर्गुण उसमें दीखते हैं। थोड़ा धन होने पर भी अपने आपको अधिक सम्पत्तिशाली बतलाने का पाखण्ड भी करता है। अपने स्वार्थ की पूर्ति में यदि कोई विघ्न डाले, तो उसे उस पर बहुत ही क्रोध आता है। उसके प्रति बदले की भावना उसमें जागृत हो जाती है और विघ्न डालने वाले व्यक्ति के साथ वह कठोरता का व्यवहार करता है। इस प्रकार इन दुर्गुणों के कारण मनुष्य **असुर** कहलाने लगता है। अपनी इन आसुरी प्रवृत्तियों के द्वारा अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिये हमेशा दूसरों के साथ बुरा व्यवहार करता है। दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा का वर्णन करते हुए गीताकार ने दैवी सम्पदा के 26 गुण बतलाये हैं। जबकि आसुरी सम्पदा के 6 दुर्गुणों की ही चर्चा की है। गुणों की अपेक्षा दुर्गुणों की संख्या बहुत कम है। विद्वानों की मान्यता है कि दुर्गुणों की बुराईयों अधिक चर्चा करना भी तो दुर्गुण, या बुराई है, अतः इनसे जितना दूर रहा जाय उतना ही अच्छा है। इसलिये गीता में दुर्गुणों की कम चर्चा की तथा गुणों के बारे में विस्तार से बतलाया है।

दोनों सम्पदाओं में भिन्नता:-

इस संसार में दो प्रकार की प्रवृत्ति पायी जाती है। दैवीय सम्पदा मोक्ष देनेवाले तथा असुरी सम्पदा **बन्धन** में डालनेवाली है। आसुरी प्रवृत्ति के लोग यह न जानते हैं कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। उन्हें प्रवृत्ति या निवृत्ति का ज्ञान नहीं होता है। न उनमें पवित्रता पायी जाती है और न उसमें सदाचार होता है। वे सत्य भी नहीं बोलते हैं वे यह कहते हैं कि यह संसार मिथ्या, झूठा है। इसका कोई आधार नहीं है। इसका कोई (स्वामी) ईश्वर नहीं है। यह संसार सामाजिक परस्पर सहयोग की भावना से नहीं अपितु कामना से अर्थात् स्वार्थ परक भावना से बना हुआ है। स्वार्थ के अलावा और कुछ भी कारण इस संसार का नहीं हो सकता है। आसुरी प्रवृत्तिवाले लोगों की चर्चा करते हुए गीता में स्पष्ट किया है इस प्रवृत्ति का मुख्य आकर्षण स्वार्थ है। **स्वार्थ में** मनुष्य **अन्धा** होकर पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म का विवेक खो देता है। कुछ भी होश नहीं रहता है कि उसे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये? ऐसी स्थिति में उसके जीवन में सत्य, सदाचार, पवित्रतादि गुण समाप्त हो जाते हैं। अपने स्वार्थ के लिये वह झूठ बोलता है, अपनी कामवासना की पूर्ति के लिये **दुराचार** अत्याचार करके सारी **पवित्रता** को **समाप्त** कर देता है। जहां भी उसे सदाचारी अच्छे लोग मिलकर कार्य करते दीखते हैं, तो वहां भी अपनी स्वार्थमयी दृष्टि से देखते हुए यही कहता है कि इसमें इन लोगों का कोई स्वार्थ ही है, जिससे ये परस्पर मिलकर कार्य कर रहे हैं। उसकी दृष्टि में कोई व्यक्ति दूसरों के कल्याण के लिये कार्य नहीं कर सकता है।

आसुरी प्रवृत्ति के व्यक्ति:-

वे किस प्रकार अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने में लगे रहते हैं? इस विषय में आगे लिखा है

thearyasamaj.org

कि "लालसाओं (वासनाओं) के सैकड़ों जालों में फंसे हुए काम, क्रोध के पंजे से बंधे हुए ये आसुरी प्रवृत्तिवाले लोग अपनी कामनाओं की तृप्ति के लिये अन्यायपूर्ण उपायों से अधिक से अधिक सम्पत्ति को इकट्ठा करने में लगे रहते हैं। वे यह सोचा करते हैं कि आज मैंने यह प्राप्त कर लिया है, कल इस इच्छा को पूरा कर लूंगा। इतना धन तो मेरे पास है ही, वह धन भी मेरा हो जायगा अर्थात् इतने धन को और भी प्राप्त कर लूंगा। मैं धनवान् के परिवार में, उच्च कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। अपनी स्तुति आप स्वयं करने वाले, अकड़बाज, हठी, दुराग्रही, धन तथा मान के मद में मस्त होकर ये पाखण्ड के लिये शास्त्र की विधि को छोड़कर अपने नाम के लिये यज्ञ किया करते हैं। भौतिकवादी व्यक्ति अपनी इच्छा पूर्ति किसी भी प्रकार के कार्य करने में संकोच नहीं करते हैं।

आसुरी प्रवृत्ति के कारण विविध अवगुणः–

अपने धन के अहंकार में हमेशा मदोन्मत्त रहते हैं, इन्हें धन के अतिरिक्त, आत्मा, परमात्मा, धर्म, स्वर्ग, मोक्ष, ईश्वरभक्ति आदि कुछ भी नहीं दीखता है। हमेशा इसी प्रकार के विचारों में उन्मत्त रहते हैं कि मैं किसी धनवान् परिवार में पैदा हुआ हूँ, मैं बहुत बड़ा हूँ। मेरे समान कोई दूसरा व्यक्ति नहीं हो सकता है। 'अपने इस अहंकार के वशीभूत होकर ये **वृद्ध जनों का विद्वानों का**, सज्जनों का **अपमान** भी कर डालते हैं। शिष्टाचार की सारी मर्यादाओं का उल्लंघन कर देते हैं। हमेशा ऐसे लोगों से खुश या प्रसन्न रहते हैं, या ऐसे लोगों को अपने चारों ओर इर्द गिर्द रखते हैं जो उनकी झूठी प्रशंसा या चापलूसी करते हैं। जब कोई इनकी प्रशंसा करने वाला न मिले, तो ये अपने आप ही अपनी प्रशंसा करने लगते हैं। यदि कोई कार्य करने पर इसकी प्रशंसा करे, तो ये उसका भी कार्य भी सदा करने लग जाते हैं। यज्ञादि धार्मिक कार्यों को भी ये लोग अपनी प्रशंसा के लिये, अपने काम की प्रसिद्धि के लिये श्रद्धा न होने पर भी करते हैं। यज्ञ करने से लोग मुझे धार्मिक, अच्छा और बड़ा आदमी मानेंगे, समाज में मेरी प्रतिष्ठा होगी ऐसा विचार करके यज्ञ करते हैं। किन्तु अपने अहंकार–दम्भ के कारण यदि कोई शास्त्रीय विधि से यज्ञ कराता है, तो वह उसे स्वीकार नहीं करता है और वह अपने मनमाने तरीके से यज्ञ कर डालता है। जो अविधि पूर्वक होने से अशास्त्रीय होता है। उसकी उसे कोई चिन्ता नहीं होती है।

विनाश के तीन द्वारः–

आसुरी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य किस प्रकार से कार्य में लगा रहता है, कितना अहंकार पूर्ण स्वार्थमय, आत्मश्लाघायुक्त लोकैषणा से युक्त उसका कार्य और व्यवहार रहता है। क्योंकि वह आत्मा और शरीर की पृथक्ता का अनुभव नहीं करता है। शरीर को ही आत्मा समझकर अपना सारा व्यवहार करता है। ऐसे व्यक्ति की क्या स्थिति होती है इस विषय में गीताकार लिखता है कि, "मनुष्य आसुरी प्रवृत्ति के द्वारा आत्मा को विनाश की ओर ले जाने वाले तीन प्रकार के दरवाजे हैं। वे **काम, क्रोध** और **लोभ** हैं। इसलिये मनुष्य को इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

thearyasamaj.org

काम, क्रोध और लोभ:–

गीता निष्काम कर्म का उपदेश देती है और आत्मिक उन्नति के लिये आवश्यक है कि मनुष्य अपनी सारी कामनाओं को समाप्त करके प्रभु को समर्पित कर दे। आत्मविकास में कामना सबसे बड़ी बाधा है। **कामना** की पूर्ति में मनुष्य जब लग जाता है तो आत्मा की ओर से उसका ध्यान हट जाता है। कामना–इच्छा की स्थिति यह है कि **एक पूरी हुई** तो **दूसरी जागृत** हो जाती है और दूसरी पूरी हुई तो तीसरी जागृत हो जाती है। कामनाओं का, इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। जिसे सौ रूपये मिल रहे हैं वह दो सौ प्राप्त करने का इच्छुक है। दो सौ मिलने वाले को पांच सौ की इच्छा, पांच सौ वाले को हजार की इच्छा, हजार मिलने वाले को पांच हजार की। इस प्रकार किसी की इच्छा पूरी नहीं होती है। इच्छाओं का कोई अन्त नही है। एक इच्छा के पूरा होने पर दूसरी इच्छा को पूरा करने का **लोभ** जागृत हो जाता है और यदि कोई व्यक्ति इच्छा में बाधा डालता है, विघ्न डालता है तो मनुष्य को **क्रोध** आ जाता है। इस प्रकार एक तरफ क्रोध है और दूसरी तरफ लोभ है। ये दोनों ही आत्मिक विकास के बाधक ही नहीं इसके विनाशक हैं। इसलिये गीताकार ने इन्हें **नरक का दरवाजा** कहा है। अर्थात् ये नरक की ओर ले जाने वाले हैं, अतः कामना को छोड़कर जब मनुष्य निष्काम कर्मी हो जाता है तब वह क्रोध और लोभ से भी स्वतः मुक्त हो जाता है।

शास्त्र के अनुसार कर्म :– इसलिये इस अध्याय के अन्त में लिखा है कि जो व्यक्ति शास्त्र के विधान को छोड़कर मन माना आचरण करने लगता है, उसे **न सिद्धि** अर्थात् सफलता मिलती है, **न सुख** मिलता है और **न हीं उत्तम गति** प्राप्त होती है। इसलिये क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये इस बात की व्यवस्था के लिये तू **शास्त्र को ही प्रमाण** समझ। शास्त्र में विधान अर्थात् नियम बताये गये हैं उनको जानकर हे अर्जुन ! तुम्हें संसार में काम करते जाना चाहिये।

शास्त्र (आप्त) प्रमाण :– मनुष्य अल्पज्ञ होता है, थोड़ा जानता है, उसे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये, इस विषय में पूर्ण रूप से निर्णय करने में असमर्थ होता है क्योंकि वह पूर्ण ज्ञानी नहीं है। उसकी दृष्टि वर्तमान तक ही सीमित रहती है अतः उसके द्वारा किये जाने वाले कार्य का प्रभाव भविष्य में दूरगामी क्या होगा, यह वह अपनी बुद्धि से नहीं जान सकता है। इसलिये यहां पर गीता में 'शास्त्र' का उल्लेख किया है तथा संकेत दिया है कि हमें शास्त्र के अनुसार ही कार्य करना चाहिये। शास्त्र में हमारे लिये हितकारक कार्यों का वर्णन है। ऋषि, मुनियों के द्वारा रचित ग्रन्थों को शास्त्र कहते हैं। जिसने ईश्वर का, आत्मा परमात्मा का, या आत्मा और शरीर के पृथक्ता का साक्षात्कार कर लिया है उसे ऋषि–मुनि कहते हैं। उनके द्वारा रचे हुए ग्रन्थों में हमारे लिये ऐसी बातें लिखी है जिससे हमें सफलता, सुख और परम शान्ति मिलती है। इसलिये श्रीकृष्ण अर्जुन को ही नहीं अपितु मनुष्य मात्र को कह रहे हैं कि ''कर्तव्य अकर्तव्य में हम शास्त्र को प्रमाण मानकर उसके अनुसार आचरण करें।'' शास्त्र प्रमाण को शब्द प्रमाण भी कहा जाता है। ❁❁❁

thearyasamaj.org

इस्लाम कैसे फैला

लेखकः– प्रीतम अमृतसरी

(स्वानिह उमरी औरंगजेब)

(लेखक मिस्टर जे. एन. सरकार)

गन्दुम नुमा जौ फरोशी

औरंगजेब ने भाइयों को मारा, भतीजों का वध किया, धोखेबाजियां कीं, बाप को बन्दी बनाकर उसे विविध प्रकार के कष्ट दिये; जिसके कारण वह संसार की नजरों से बिल्कुल गिर गया। और बदनाम हो गया। अब उसने विचारा कि सिवाय मजहबी स्वांग बनाने के और कोई ऐसा साधन नहीं जिससे कि मेरी बदनामी का टीका धुल सके। अतः उसने अपने आप को 'पक्का मुतकी तथा परहेजगार' जाहिर करना आरम्भ कर दिया; और शरअ मुहम्मदी की आज्ञाओं का सख्ती से पालन करने लग गया ताकि लोग उसकी गत करतूतों को भूल जाँय।

एक इस्लामी राज्य का लक्ष्य

एक मुहम्मदी सल्तनत का मनशा यह होता था कि **जिस प्रकार भी हो सके तमाम प्रजा को मुसलमान बना ले, तथा इस्लाम से विभिन्न समस्त विचारों का दमन कर दिया जाय। यदि किसी काफिर को इस्लामी राज्य में रहने भी दिया जाता था तो राजनैतिक तथा सामाजिक समस्यायें ऐसी उपस्थित कर दी जाती थीं और सरकारी कोष से प्रलोभन भी दिये जाते ताकि जिस प्रकार भी हो सके जल्दी से जल्दी वे लोग 'हलका बगोशि इस्लाम' हो जाँय।**

दीनि मुहम्मदी के नेता इस बात पर सहमत हैं कि लड़ाई में फतह किये हुए शत्रु को गुलाम बना लिया जाय ताकि इतनी देर (गुलामी की हालत में) में वे मुसलमान बनाये जा सकें। यदि मुहम्मदी राजा की प्रजा में से दो काफिर एक दूसरे के वध करने को तत्पर हो जाँय, तो बादशाह को उचित है कि चुप साधे देखा करे क्योंकि–

"हर तरफ कि शवद कुशता सूदि इस्लाम अस्त"

thearyasamaj.org

अर्थात् चाहे कोई भी मरे इस्लाम का लाभ ही है। उदाहरणार्थ– यदि दो महन्त हों। एक कहे कि मैं पहले स्नान करूँगा और दूसरा कहे कि नहीं मैं पहले नहाऊँगा। इस बात पर वे लड़ पड़ें। यहां तक कि एक कतल भी हो जाय। तो अकबर जैसा शान्ति तथा कानून का ठेकेदार समझा जाने वाला बादशाह भी चुप ही रहेगा ताकि काफिरों की संख्या घटे।

विधर्मियों को किस प्रकार नाकारा किया जाता था

इसलिये एक गैर मुस्लिम (हिन्दू), मुहम्मदी सल्तनत का नागरिक नहीं कहला सकता था, बल्कि वह एक नीच जाति का आदमी समझा जाता था। वह केवल एक प्रकार का गुलाम था और बस। वह सामयकि राज्य के अन्दर एक 'जिम्मी' की हैसियत से रहता था। उसे 'जजिया' अदा करना होगा, 'खिराज' भी देना होगा, सेना को रखने के लिए अन्य टेक्स भी देने होंगे; परन्तु वह सेना में भर्ती नहीं हो सकेगा। यहाँ तक कि उसे अपनी पोशाक तथा रहन सहन से प्रतिक्षण यह प्रकट करना पड़ेगा, कि वह शासित जाति का पुरुष है। कोई भी 'जिम्मी' उमदा लिबास नहीं पहन सकता था। हथियार नहीं बांध सकता था। शासक जाति के प्रत्येक व्यक्ति का मान करना 'जिम्मी' का प्रथम कर्त्तव्य था। प्रत्येक 'जिम्मी' को 'जजिया' अदा करना पड़ता था। 'जिम्मी' को जमीन का कर भी मुसलमानों से अधिक देना पड़ता था। 'जिम्मी' अपने धर्म की उत्कृष्टता भी प्रकट न कर सकते थे (देखो इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम)।

काजी सियासुद्दीन ने अलाउद्दीन खिलजी को शरअ मुहम्मदी के अनुसार ही बतलाया था– 'कि शरअ शरीफ में हिन्दुओं को खिराज गुजार कहा गया है। यदि मुसलमान माल अफसर उनसे चांदी मांगे तो उनका कर्त्तव्य है कि सुवर्ण दें। यदि उक्त अफसर उनके मुँह में मट्टी डाले तो उन्हें चाहिये कि उस खाक को स्वागत कहें, और निहायत ही शौक से मुँह खोल दें।............रसूलुल्ला ने हमें आज्ञा दी है कि उन्हें (काफिरों को) कतल करें, उन्हें लूटें और उन्हें कैद करें। शेष समस्त मुहम्मदी नेताओं की आज्ञा है कि हिन्दुओं के वास्ते दो ही रास्ते हैं-(1) मृत्यु (2) इस्लाम।

कोई नया मन्दिर न बनाया जाय

औरंगजेब ने इसके सम्बन्ध में एक फरमान जारी किया जो निम्न लिखित है–

'शरअ के अनुसार यह निश्चय हुआ है कि कोई पुराना मन्दिर न गिराया जाय; परन्तु कोई नया मन्दिर बनाया भी न जाय। (आगे चलकर पता लगेगा कि कितने मन्दिर गिराये गये–प्रीतम)

साफ–साफ बातें

जब अरबी मुसलमान आरम्भ में भारतवर्ष में आये और सिन्धु देश पर विजय प्राप्त करते रहे

thearyasamaj.org

तब वे लोग....... जिस स्थान को फतह करते वहां के रहने वालों को बुलाते और इस्लाम लाने को कहते। यदि वे मान जाते तो उन्हें तमाम मुसलमानों के बराबर के स्वत्व दे दिये जो; परन्तु यदि वह स्वीकार न करते तो उन पर जजिया लगा दिया जाता। और इस प्रकार वे अपने धार्मिक स्वत्व लोभी विजेताओं से खरीद लेते। जूँ जूँ मुसलमानों की जनसंख्या देश में बढ़ती गई, हिन्दुओं के रहे सहे हक भी जो कि वे रुपया देकर खरीदा करते थे, मारे जाने लगे। उन्हें मुसलमान बनाने के लिये विविध प्रकार के प्रलोभन दिये जाते थे। उन्हें हर भांति अपमानित किया जाता था। नामुराद जजिया और अपमान के अतिरिक्त तरह-तरह के लालच और रंग-रंग के भय दिखाये जाते थे। हिन्दु धर्म से पतित होने वालों को कई प्रकार के पुरस्कार, पद, अधिकार, तथा जागीर आदि के रुप में दिये जाते थे। हिन्दु नेताओं को विशेष रूप से दु:खित किया जाता था। उन पर हर तरह के अत्याचार उचित समझे जाते थे, ताकि हिन्दुओं को धार्मिक तथा आचार व्यवहार की शिक्षा प्राप्त न को सके। उनके धार्मिक उत्सव तथा सवारियां रोक दी जाती थीं, ताकि उनके अन्दर से धार्मिक जोश और जातीयता के भाव नष्ट हो जायं तथा उनके हृदयों से आत्मसम्मान और जातीय गौरव और जातीय सहानुभूति बिल्कुल मिट जाय। किसी नये मन्दिर के बनाने की आज्ञा न थी, और न ही यह हुकम था कि किसी पुराने मन्दिर की मरम्मत की जा सके। जिसका स्पष्ट तात्पर्य यह था कि शनैः शनैः कुछ काल व्यतीत हो जाने पर मन्दिरों का नाम और हिन्दुओं के पूजा स्थानों का चिन्ह भारतवर्ष में दिखाई भी नहीं देगा।

यहाँ तक ही बस नहीं। प्रत्युत बहुत से ऐसे भी मजहबी दीवाने थे जो कि इतने भी समय की प्रतीक्षा नहीं करना चाहते थे। उन्हें यह धुन समा रही थी कि 'कुकर' को एक दम में सँसार से मिटा देना चाहिये। और कुछ काल व्यतीत हो जाने पर इन 'बुतखानों' के जमीन के साथ मिलने से यह अच्छा हो कि हम स्वयं उन्हें गिराकर पुण्य के भागी बनते हुए शीघ्र स्वर्ग में पहुंच सकें।"

यह भाव प्रतिदिन उत्तेजित होता गया और जब तयमूर ने अपनी झोंपड़ी में भारतवर्ष की धन सम्पत्ति का वृत्तान्त सुना, और जब उसे मालूम हुआ कि भारतवासी आनन्द से जीवन यात्रा करते हैं तो उसके सीने में एक ज्वाला सी प्रदीप्त हो उठी। उसके मन में लोभाग्नि के शोले बुलन्द होने शुरू हुए। बस फिर क्या था, झट घोषणा कर दी कि "वीरो! उठो और कटिबद्ध हो जाओ। हमने भारतवर्ष पर धावा करना है। मेरा उद्देश्य केवल यह है कि मैं वहां जाकर हिन्दुओं के मन्दिरों को गिराऊँ, उनके बुतों को तोड़ूं, और खुदा के सामने गाजी और मुजाहिद बन दिखाऊँ; क्योंकि भारत निवासी काफिर और मुशरिक हैं। वह मूर्त्ति पूजक हैं, सूर्य प्रस्त हैं; खुदा के हुकम से हमारे लिये यह पुण्य का काम है कि उनको फतह करें।

1569 में जब एक मुसलमान रईस हुसैन खान नामी को यह मालूम हुआ कि शिबालक पर्वत के अन्दरूनी मन्दिरों की ईंटें सोने तथा चांदी की हैं, तो झट उन मन्दिरों को मिस्सार करके उन ईंटों को उठा लाने की इच्छा से उधर चढ़ गया। इस चढ़ाई को भी अलबदायूनी (?) जैसे लेखकों ने धार्मिक युद्ध लिखा है।

thearyasamaj.org

फिर जब मुहम्मद आदिलशाह ने कनार्टक के हिन्दुओं पर चढ़ाई कि जिनका कि केवल दोष यह था कि धनाढय थे; तो मार काट, लूट खसोट, तथा और बरबादी की इस 'मुहिम्म' को उसके दरबार का इतिहास लेखक 'शिव संकल्प, के नाम से पुकारता है।

यही कारण है कि मुसलमानों में 'काफिर कुशी, अर्थात् काफिरों के वध जैसे अमानुषिक तथा घृणित कार्य को एक पवित्र गुण समझा जाता है मुसलमानों को इस बात की आवश्यकता नहीं कि वे आत्मिकोन्नति का इन्द्रियों का दमन करने का कष्ट उठाते फिरें या अपने मन को वशीभूत करके इच्छाओं को रोकें; प्रत्युत उनके लिये यदि कोई अनिवार्य धर्म है तो यह कि अपने जैसे मनुष्यों की एक विशेष संख्या को भीरुता अथवा शौर्य से, धोखे से या फरेब से जिस प्रकार भी हो सके मृत्यु शैया पर सुलायें। बस उनके वास्ते स्वर्ग द्वार खुल जाँयगें।

वह मजहब जो मनुष्यों को लूट और गारतगारी की शिक्षा दे; वह मत जो अपने अनुयायियों को अकारण मनुष्य-वध की दीक्षा दे; निःसन्देह वह मजहब संसार की उन्नति के मार्ग में एक असह्य विघ्न है और भूमण्डल के सुख और शान्ति के लिये हलाहल विष है।

औरंगजेब का आरम्भिक तअस्सुव

औरंगजेब ने अपनी हकूमत के प्रथम ही वर्ष में काशी के एक पण्डित को एक चार्टर दिया जिसमें उसने बतलाया कि मेरा मजहब 'बुतखानों' के बनाने की आज्ञा नहीं देता हां पुराने मन्दिरों को गिराना भी आवश्यक नहीं समझता।

सन् 1644 ई0 में जब कि आप गुजरात प्रान्त के वाइसराय थे, तो आपने अहमदाबाद के चिन्तामणि मन्दिर में एक गौ का घात करके उक्त मन्दिर को अपवित्र करने की धृष्टता की; और तत्पश्चात् उसे मस्जिद में परिवर्तित कर दिया। उसी जमाने में उसने कतिपय हिन्दु मंदिरों को गिरा दिया।

उसके राज्य के आरम्भ में ही एक आज्ञा पत्र जारी किया गया जो कि उड़ीसा के प्रत्येक ग्राम के अधिकारी वर्ग के नाम था। (इस जन-पद में कटक से बंदिया पुर तक का प्रदेश गिना जाता था) उसमें उन्हें यह आज्ञा दी गई थी, कि पिछले 10 या 12 वर्ष में जो भी हिन्दु मन्दिर बनाये गये हों, उन सबको मिसमार कर दो; और किसी नये मन्दिर की मरम्मत की आज्ञा मत दो। **-(शेष अगले अंक में)**

पाठकों से निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के पाठकों से निवेदन है कि वर्ष 2014 का वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रुपये शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** के पते पर कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका सुचारू रूप से आपको प्राप्त होती रहे।

-व्यवस्थापक

thearyasamaj.org

मानव विनाश तथा कर्मफल सिद्धान्त

लेखकः कृपालसिंह वर्मा, कंकड़खेड़ा, मेरठ (उ० प्र०)

मनुष्य अपने पूर्वकृत कर्मों के फलों के वशीभूत होकर ही कोई कार्य करता है। यदि हम किसी महान सुख अथवा विनाशकारी दु:ख में अपने को अनुभव करते हैं तो वह हमारे पुण्य-पाप कर्मों का परिणाम है। आकस्मिक आने वाले दारुण दु:ख भी हमारे द्वारा कृत कर्मों का फल हैं। हम अपने पूर्व कृत कर्मों के प्रभाव से ही उस महाविनाश के स्थल पर आये हैं। जीवन में आने वाला कोई भी बड़े से बड़ा आकस्मिक दु:ख हमारे कर्मों का फल है। कुछ विद्वानों का मत है कि हमें बिना कर्म किये ही दारुण दु:ख मिल सकता है। यह मत युक्ति तथा प्रमाण के विरुद्ध है। मनुष्य पुण्य कर्म का फल भोगने में स्वतंत्र तथा पाप कर्मों का फल भोगने में परतंत्र होता है। पुण्य कर्म हमें स्वतंत्रता की ओर ले जाते हैं तथा पाप कर्म परतन्त्रता की ओर ले जाते हैं। परतन्त्रता के कारण ही व्यक्ति दु:खों को भोगते हैं। स्वतन्त्रता की अवस्था में तो सुख का ही वरण करता है। हमारे द्वारा किये किसी कर्म का फल अनेक बार मिल सकता है तथा अनेक प्रकार से मिल सकता है। अनेक कर्म जुड़कर भी एक फल दे सकते हैं। कर्मों के फलीभूत होने की गति अत्यन्त गहन है। आत्मा अनेक जन्मों से अनेक प्रकार के कर्म करता आ रहा है। किन कर्मों के फलीभूत होने का समय आ गया है, यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए। जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है। इसलिए उसके द्वारा भविष्य में किये जाने वाले सभी कर्मों की भविष्यवाणी कोई नहीं कर सकता। जीवात्मा फल भोगने में परतन्त्र है। उसके द्वारा किये कर्म का किस परिस्थिति में क्या परिणाम हो सकता है इसका अनुमान क्रिया जा सकता है। किसी के भविष्य को पूर्णरूप से कोई नहीं जान सकता। यहाँ तक कि परमात्मा भी नहीं। जड़ ऋत् से बन्धा होता है चेतन आत्मा स्वतन्त्र है, ऋत् से स्वतन्त्र है। वह अनऋत् भी चल सकता है। आत्मा अपने पाप कर्मों द्वारा उत्पन्न परतन्त्रता के जाल में फंसा हुआ ही स्वतन्त्र कार्य करता है। ❁❁❁

श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती बने प्रधान संरक्षक

श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास, भागलभीम भीनमाल के प्रधान संरक्षक के पद पर श्री आचार्यधर्मबन्धु जी का कार्यकाल 21 अक्टूबर 2014 को पूर्ण होने पर न्यास के संस्थापक व प्रमुख श्री आचार्य अग्निव्रत जी नैष्ठिक ने न्यास की बैठक में दिनांक 12.10.2014 को सर्वसम्मत परामर्श पर प्रौढ़ वैदिक विद्वान् श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती, उत्तरकाशी को 22 अक्टूबर 2014 से आगामी तीन वर्ष के लिए प्रधान संरक्षक मनोनीत किया।

मंत्री, श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास, भागलभीम, भीनमाल (राजस्थान)

thearyasamaj.org

एक श्रेष्ठ पुस्तक ! संक्षिप्त समीक्षा

लेखकः रामेन्द्रकुमार आर्य (शिक्षक), मदनियाँ महोली, जिला–सीतापुर (उ० प्र०)

मनुष्य सृष्टि का श्रृंगार है मनुष्य की सबसे पहली समस्या खाद्य की समस्या है इसके बाद कपड़ा और आवास का स्थान आता है इन तीन समस्याओं को हल कर लेने से ही मानव जीवन का लक्ष्य पूरा नहीं होता मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है जिसे ज्ञान व कर्म के समन्वय से प्राप्त किया जा सकता है। प्राणी के लिए मनुष्य का होना ही उसकी सबसे बड़ी जीत नहीं है सत्य का बोध, पाखण्ड व अज्ञान से मुक्ति। मनुष्य के शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अंग उसका मस्तिष्क है। मस्तिक का भोजन शुद्ध ज्ञान, सत्य व शुद्ध साहित्य है शिक्षा मस्तिष्क का मेरुदण्ड है मस्तिष्क के विकास से ही मनुष्य महान बनता है। महान बनने हेतु मस्तिष्क में श्रेष्ठ विचारों का उदय होना अति आवश्यक है। श्रेष्ठ विचारों के मुख्यतः दो स्रोत हैं। सद्ग्रन्थ और शुद्ध सच्चा सत्संग, सत्संग एक निर्धारित समय व निश्चित स्थान पर ही सम्भव है लेकिन एक अच्छी पुस्तक का लाभ हम कहीं भी व किसी भी समय उठा सकते हैं। सत्संग की तुलना में पुस्तक से शिक्षितों के लिए लाभ लेना सीमित धन से भी सम्भव है। अच्छी पुस्तकों के अध्ययन और पढ़ी हुई बातों पर मनन चिन्तन करने के बाद अच्छे विचार मस्तिष्क में गढ़ जाते हैं जो पढ़ने के बाद चिन्तन नहीं करता उसका कोई भविष्य नहीं जो केवल चिन्तन ही करता और पढ़ता नहीं वह स्थायी रूप से संकट ग्रस्त बन जाता है। सद्ग्रन्थों के पढ़ने से व्यक्ति प्रत्येक संकट के समय मनोबल से सन्तुलित रहता है अनेकों आजादी के दीवाने पुस्तकों द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हुए फाँसी के तख्तों पर भी सुखी–2 चढ़ गये। इसमें महर्षि दयानन्द, दिनकर, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, श्यामलाल पार्षद, भारत भूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र आदि कवियों की कृतियां प्रमुख रहीं। पुस्तकें ज्ञान के अतिरिक्त एक सच्चे मित्र की भांति धैर्य प्रदान करती हैं जब कभी मन में ओछे विचार आयें तो ज्ञानवर्धक पुस्तकें पढ़ें जिससे चरित्र निर्माण होगा। कभी–2 उचित परामर्श के अभाव में पुस्तकें ही साथ देती हैं। अफ्रीका के अश्वेत नेता डॉ. नेल्सन मन्डेला (भारत रत्न) ने अपने 27 वर्ष का कारावास का जीवन पुस्तकों के सहारे ही व्यतीत किया असभ्य राष्ट्रों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण विश्व पर पुस्तकों का ही शासन है। पुस्तकें सबसे अधिक समय तक रहने वाली मानव सन्तति हैं। मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों व गिरिजाघरों का कुछ समय के बाद क्षय हो जाना सम्भव है लेकिन पुस्तकें कालजयी रहती हैं। चाहे रत्नसागर में डुबकी लगाने वाला खाली हाथ रह जाय लेकिन अच्छी पुस्तक पढ़ने वाला व्यक्ति अवश्य ही विशुद्ध विवेक को प्राप्त करता है अच्छी पुस्तक गूंगे का गुड़ है जिसे पढ़कर संस्कार सुधरते व आनन्द की प्राप्ति होती है। जिसके पास श्रेष्ठ पुस्तकें हैं और पढ़ने की रुचि है वह कभी अकेला नहीं रहता तथा विश्व में जितना भी

thearyasamaj.org

ज्ञान है वह अच्छी पुस्तकों में ही निहित है। बुद्धिमानों की रचनाएं ही एक मात्र ऐसी अक्षय निधि हैं जिन्हें हमारी सन्ततियां विनष्ट नहीं कर सकती। वेद, शास्त्र, गीता, उपनिषद, महाभारत, वाल्मीकि रामायण ऐसी पुस्तकें हैं जिनका ज्ञान प्रत्येक संकट के समय हमारे अन्दर विचार शक्ति लाकर धैर्य प्रदान करता है तथा सत्यार्थ प्रकाश ऐसी पुस्तक है जो दर्पण का कार्य करती है साहित्य समाज का दर्पण भी कहा गया है। चारों आश्रमों में स्वाध्याय पर ऋषियों ने विशेष जोर दिया है। साधारण परिवार में जन्मे अब्राहम लिंकन ने अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वशिंगटन का जीवन चरित्र पढ़कर प्रेरणा लेकर अमेरिका के राष्ट्रपति बनकर वहां पर व्याप्त सामाजिक बुराई दास प्रथा का अन्त किया।

एडोल्फ हिटलर को किताबों से नफरत के लिए भी जाना जाता है वह प्रतिबद्ध अध्येता भी था उसके पास 16 हजार पुस्तकें थी व उसे पुस्तकों से गहरा लगाव था। कहा जाता है कि शहीदे आजम सरदार भगतसिंह पुस्तकों को पढ़ते नहीं निगलते थे। रूस के अनेकों विद्वानों की पुस्तकें उन्होंने पढ़ी थीं। 23 मार्च सन् 1931 को फाँसी के कुछ देर पहले भी वह पं0 रामप्रसाद विस्मिल की जीवनी पढ़ रहे थे। जब जल्लाद उन्हें फाँसी के लिए लेने आया तो पुस्तक में नजरे गड़ाए हुए उन्होंने बिना सिर उठाये उससे कहा ठहरो भाई पहले एक क्रान्तिकारी दूसरे क्रान्तिकारी से मिल तो लें।

लौह पुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल अपना सारा समय अध्ययन में ही लगाते थे उनके निवास से पुस्तकालय 11 मील दूर था। वह प्रतिदिन सबेरे उठकर पुस्तकालय में जाकर सायं पुस्तकालय से उठते इस अध्ययन के फलस्वरूप वह उस वर्ष वकालत की परीक्षा में सर्वप्रथम रहे। इस पर उन्हें 50 पौन्ड का पुरस्कार भी मिला। महान समाज सेविका मदर टेरेसा को भारत के बारे में बहुत सी जानकारी पुस्तकों से मिली। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने गीता रहस्य पुस्तक बन्दीगृह में लिखी अर्थात् ज्ञान से ही सच्चा सुख प्राप्त होता है।

आचार्य चाणक्य ने कहा भी है–

नास्ति काम समोव्याधि नास्ति मोह समो रिपुः।
नास्ति कोप समो वह्निनास्ति ज्ञानात् परमं सुखं।।

अर्थात् कामवासना के समान कोई रोग नहीं है और मोह के समान शत्रु नहीं है। क्रोध के समान आग नहीं है ज्ञान से अधिक सुख किसी वस्तु में नहीं है। अर्थात् (अध्ययन में कभी सन्तोष न करें।)।

महाभारत युद्ध के पश्चात् जितने भी अध्येता व लेखक विचारक साहित्य व सामाजिक सेवा में उतरे उनका आदि मूल स्रोत कहीं न कहीं आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द ही थे। जिस घर में सत्साहित्य का अभाव है वह घर बिना खिड़की वाले कमरे के समान अर्थात् कोपभवन है।

पुस्तकें के प्रति ! महापुरुषों की टिप्पणियां

1– मैं अच्छी पुस्तकों का स्वर्ग में भी स्वागत करूँगा क्योंकि वे जहां होगीं सब आप ही स्वर्ग हो

thearyasamaj.org

जायेगा। **–पं0 लोकमान्य तिलक**

2– पुस्तक प्रेमी सबसे धनी व सुखी हो सकता है। **–मनु0**

3– पुस्तकें वे दर्पण हैं जिनमें सन्तों तथा वीरों के मस्तिष्क हमारे लिए प्रतिविम्ब होते हैं। **–गिबन**

4– एक अच्छी पुस्तक का मूल्य कहीं हीरे, जवाहरात से अधिक है क्योंकि आभूषण वाह्य चमक लाते हैं लेकिन अच्छी पुस्तक के अध्ययन से चरित्र में चमक आती है। **–महात्मा गाँधी**

5– अच्छी पुस्तक एक महान आत्मा का अमूल्य जीवन रक्त है। **–मिल्टन**

6– पुस्तकें जिन्दगी की तन्हाइयों की साथी हैं। **–डॉ0 जाकिर हुसेन**

7– पुस्तक जेब में रखा हुआ उद्यान है जो हमारे मन को सदैव सुवासित व प्रफुल्लित रखता है। **–अरबी कहावत**

8– अच्छी पुस्तक पास में होने से अच्छे मित्र न होने का अभाव नहीं खटकता पुस्तकों में ज्ञान के अतिरिक्त एक सच्चे साथी की तरह धैर्य देकर साहस प्रदान करके आशा एवं स्फूर्ति संचार करके प्रेरणा प्रदान करती है। **–रवीन्द्रनाथ टैगोर**

9– मैंने प्रत्येक स्थान पर विश्राम खोजा किन्तु वह एकान्त कौने में बैठकर पुस्तक पढ़ने के अतिरिक्त कहीं प्राप्त न हो सका। **–थामस ए कैम्पिन**

10– विचारों के युद्ध में किताबें ही अस्त्र होती हैं। **–जार्ज बर्नाडशाह**

11– लोग कहते हैं कि जीवन ही सब कुछ है पर मैं तो पठन–पाठन को तरजीह देता हूँ। **–लागन पिर्यसन स्मिथ**

12– गृहस्थ अपने अवकाश के समय जो बुद्धि, धन और हित की शीघ्र वृद्धि करने हारे शास्त्र और वेद हैं उनको नित्य सुनें और सुनावें। – **स. प्र. गृहस्थ के कर्तव्य**

13– कुछ पुस्तकें मात्र चखने योग्य होती हैं और कुछ निगल जाने योग्य कुछ ही पुस्तकें ऐसी होती हैं जिन्हें चबाया या पचाया जा सकता है। **–बेकन**

14– हमारी अन्तस्थ भावनाओं को जाग्रत कराने की जिसमें सामर्थ्य है वह पुस्तकें ही हैं। –गाँधी जी

15– पाठ्य पुस्तक वह साधन है जिसके माध्यम से अध्यापक किसी विषय को कक्षा के सामने प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। **–मैक्स वेल**

16– सब मनुष्यों को उचित है कि सबसे मत विषयक पुस्तकों को समझकर कुछ सम्मति व असम्मति देवें वा लिखें नहीं तो सुना करें। **–महर्षि दयानन्द**

17– विद्वानों आप्तों का यही काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। **–महर्षि दयानन्द**

18– किसी घर में पुस्तकालय का बनाना मानो उस घर को सजीव कर देता है। **–सिसरो**

19– दुनिया की कोई चीज किताबों की कमी को पूरा नहीं कर सकती हर एक मनुष्य को अपने घर

thearyasamaj.org

में अच्छी पुस्तकों का संग्रह अवश्य करना चाहिए इसके लिए चाहे कितना कष्ट क्यों न उठाना पड़े। **–डबलू. ई. चैनिंग**

20– अच्छी पुस्तकें जीवन देव प्रतिमा है। **–अज्ञात**

21– अन्धकार है वहां जहां आदित्य नहीं है, मुर्दा है वद देश जहां साहित्य नहीं है। – रामदेवी प्रसाद

22– गन्दी पुस्तकें पढ़ना विष के समान है। **–टालस्ताय**

23– हम देखते सुनते हुए भी देखते सुनते नहीं, पढ़ना सभी का व्यर्थ उनका जो कभी गुनते नहीं।
संसार में कविता अनेकों क्रान्तियाँ हैं कर चुकी,
मुरझे मनों में वेग को विद्युत प्रभाए भर चुकी। –मैथिलीशरण गुप्त

24– स्वाध्याय करने वाला सुख की नींद सोता है युक्त मना होता है अपना परम चिकित्सक होता है उसमें इन्द्रियों का संयम और एकाग्रता आती है और प्रज्ञा की अभिवृद्धि होती है। **–श. ब्रा. 11/5/6/9**

25– मेरा कई बार का अनुभव है जब कभी मैं संसार यातनाओं प्रेम विश्वासियों तथा विश्वासघातियों की चालों से दु:खित हुआ हूँ और बहुत ही निकट (सम्भव) या कि सर्वनाश कर लेता किन्तु प्राण प्यारी रचनाओं ने ही मुझे धैर्य बँधाकर संसार यात्रा की कठिन (राह) पर चलने के लिए उत्साहित किया। **–(सशत्र क्रान्ति के सफल नेता प्रमुख संचालक सुयोग्य लेखक व वक्ता अमर शहीद पं0 रामप्रसाद विस्मिल)**

26– स्वाध्याय में आश्चर्यजनक शक्ति है। वह मनुष्य के हलकेपन को नष्ट कर देता है, सच्छास्त्रों द्वारा महान आत्माओं की संगति से मनुष्य का मन नम्र अगर्वित और अपने असली मूल्य को समझने के योग्य हो जाता है। अत: प्रत्येक आर्य के उचित है कि वह हर दिन अपना थोड़ा समय स्वाध्याय में लगावे। **–स्वामी श्रद्धानन्द संस्थापक गुरुकुल कांगड़ी वि. वि. हरिद्वार**

27– महापुरुषों की पुस्तकें पढ़ो उनके अक्षरस: गुलाम न बनो। **–स्वामी रामदेव**

28- A book should be luminous but not valliminous. **-James wood**

29- A book is a precious life blood is its matter. **-Milton**

❁❁❁

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका मंगाने हेतु

एक वर्ष के लिए 150/– एक सौ पचास रुपये वार्षिक शुल्क,

पन्द्रह वर्ष के लिए 1500/– एक हजार पाँच सौ रुपये

आज ही भेजिये।

thearyasamaj.org

सृष्टि-प्रलय-संवत्सरादि काल गणना

लेखकः - महात्मा ओममुनि, वैदिक भक्ति साधना आश्रम, आर्यनगर रोहतक (हरि0)

तम आसीत्तमसा गूडमग्नेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। ऋग्वेद- 10.129.3

सृष्टि से पूर्व प्रलय नामक महारात्रि में सत्त्व, रजस् व तपस् रूपी कारण प्रकृति गूढ़ अन्धकार में निमग्न थी। सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि यह चक्र अनन्त काल से चल रहा है और अनन्त काल तक इसी प्रकार चलता रहेगा। प्रलय रूपी रात्रि की समाप्ति पर परमपिता परमात्मा सृष्टि की रचना करते हैं, जिसका संकेत ऋग्वेद के तीन निम्न मंत्रों में दिया गया है-

'ऋतंच सत्यं.......समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो.....। सूर्याचन्द्रमसौ धाता.....। -(ऋ. 10.190.1-3)

वैदिक शास्त्रों के अनुसार सृष्टि और प्रलय को ब्रह्म के दिन और रात की संज्ञा दी गई है। अब जिज्ञासा यह उत्पन्न होती है कि ब्रह्म के ये दिन-रात कितने-2 काल के होते हैं। मनुस्मृति, अन्य शास्त्रों एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार सृष्टि व प्रलय की गणना दो प्रकार से की जाती है-

प्रथम गणना- के अनुसार 43,20,000 वर्षों की एक चतुर्युगी और 1000 चतुर्युगियों की एक सृष्टि (43,20,000 x1,000 = 4,32,00,000) अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों की एक सृष्टि और इतने की काल की एक प्रलय। सृष्टि के इसी काल को ब्रह्म का एक दिन व प्रलय को रात्रि को संज्ञा दी गई है।

द्वितीय गणना- के अनुसार 43, 20,000 वर्षों की एक चतुर्युगी, 71 चतुर्युगियों का एक मन्वंतर और 14 मन्वंतरों की एक सृष्टि (43,20,000 X71 = 30,67,20,000X14=4, 29,40,80,000) अर्थात् चार अरब उन्तीस करोड़ चालीस लाख अस्सी हजार वर्षों की एक सृष्टि। किन्तु इस गणना को ब्रह्म के दिन-रात की संज्ञा दी गई है।

उपरोक्त दोनों गणनाओं में (4,32,00,00,000=4,29,40,80,000=2,59,20,000) अर्थात्-दो करोड़ उनसठ लाख बीस हजार वर्षों का अन्तर है। अब यह अन्तर क्यों है और इसका रहस्य क्या है? कुछ विद्वान् इस 2,59,20,000 वर्षों के अन्तर को 14 मन्वंतरों के मध्य सन्धि काल के रूप में करते हैं। किन्तु व्यावहारिक रूप से ऐसा उचित नहीं लगता। यद्यपि मन्वंतरों के मध्य में सन्धिकाल तो है किन्तु ये सन्धिकाल अलग से नहीं हैं अपितु मन्वंतरों की समयावधि के अन्तर्गत ही समायोजित हैं। इसी प्रकार मन्वंतरों के सन्धिकाल के बारे में भी समझना चाहिए।

काल गणना की दोनों विधाओं के अन्तर 2,59,20,000 वर्षों को वास्तव में दो भागों में बांटना उचित है। प्रथम 1,29,60,000 वर्षों का काल सृष्टि के प्रारम्भ में जड़-चेतनादि की उत्पत्ति के लिए और दूसरा इतने ही वर्षों का भाग सृष्टि के अन्त में विनाश/प्रलय के लिए है। जिस प्रकार बारह घण्टों का दिन और बारह घण्टे कोई कार्य करता है। सरकार द्वारा भी कार्य के लिए आठ घण्टे निर्धारित हैं। बहुत से लोग

thearyasamaj.org

रात्रि के अन्तिम प्रहर ब्रह्ममुहुर्त्त समझे जाने वाले समय में उठकर सन्ध्या-वन्दन, साधना, जप-तप आदि या अन्य शुभ कार्यों में लगाते हैं। परमपिता परमात्मा भी प्रलय रूपी रात्रि के अन्त के सन्धिकाल में सृष्टि रचना का इक्षण करते हैं-'**ऋतत्रच सत्यं**.....। (ऋ-10.190.1-3) पूर्व कल्प की तरह सृष्टि की रचना करते हैं। समय का विभाजन, रात-दिन, पक्ष, मास, ऋतु व संवत्सर आदि का निर्माण करते हैं। सूर्य, पृथिवी, चान्द-सितारों एवं सभी लोक-लोकान्तरों को धारण करते हैं।

सृष्टि रचना की इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम महतत्त्व के पश्चात् अहंकार फिर पाँच तन्मात्रा, सूक्ष्म भूत और दस इन्द्रियाँ तथा ग्यारहवाँ मन, पाँच तन्मात्राओं से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं। इन पाँचों महाभूतों के उत्पत्ति के साथ ही-

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। -यजु.13/4

हिरण्यगर्भ नामक एक विशालकाय अण्डे का निर्माण होता है। इस विशाल अण्डेरूपी गर्भ में सूर्य, पृथिवी व चान्द-सितारे आदि अन्य लोक-लोकान्तरों का निर्माण होता है। जब प्रलय काल की सन्धिबेला समाप्त हो जाती है और सृष्टिकाल की सन्धिबेला प्रारम्भ होती है, तब यह तीव्र गति से घूमता हुआ विशालकाय अण्डा पककर फट जाता है और उसमें निर्मित सभी लोक-लोकान्तर तीव्र गति से घूमते हुए अपनी-2 कक्षाओं में स्थापित होकर अपने-2 मुख्य ग्रह/तारे की परिक्रमा करने लगते हैं। जैसे सूर्य के शुक्र, बुध, पृथिवी, मंगल, बृहस्पति व शनि आदि सूर्य की परिक्रमा करते हैं और पृथिवी का उपग्रह चन्द्रमा पृथिवीकी परिक्रमा करता है। पृथिवी सूर्य की परिक्रमा 365.25 दिनों में पूरी करती है, जिसे एक सौर वर्ष कहा जाता है और चन्द्रमा पृथिवी की परिक्रमा 29.53 दिन में पूरी करता है, इसे एक चन्द्रमास कहा जाता है और ऐसे बारह चन्द्र मासों को एक चन्द्र वर्ष कहा जाता है। चन्द्र वर्ष 354 दिनों का होता है जो सौर वर्ष से 11 दिन छोटा होता है, इसीलिए प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् एक अतिरिक्त चन्द्रमास जोड़ा जाता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में एक मन्त्र है-

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत। तस्मिन् साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।। (ऋ.1.164.48, अ. 10.8.4)

अर्थात्-एक चक्र है जिसमें बारह अरे (बारह सौर मास) लगे हैं, तीन नाभि स्थान (तीन मुख्य ऋतुएं-ग्रीष्म, वर्षा और सर्दी) उस चक्र में साथ ही कीलकों के भांति तीन सौ साठ चल और अचल अंश/कोण/कला, चलते जाने वाले अर्पित हैं। वह कौन है जो उस एक चक्र के रहस्य को समझता है?

उत्तर है-इस चक्र का रहस्य सौर वर्ष/संवत्सर है। पृथिवी सूर्य के चारों ओर एक चक्र अण्डाकार वृत में लगाती है, जिसे क्रान्तिवृत कहा जाता है। पृथिवी ये 360 अंश की यात्रा 365.25 दिनों में पूरी करती है, जिसे वैदिक भाषा में बारह आदित्य/बारह और सौर मास कहा जाता है। यूनानी ज्योतिषाचार्यों ने इनका नाम राशियाँ रखा है। यजुर्वेद के निम्न मंत्र में बारह सौर मासों का उल्लेख है-

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय

thearyasamaj.org

त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृहीताऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽयूर्ज्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोऽस्यूँ हसस्पतये त्वा।। (यजु.7/30)

उपरोक्त वेद मंत्र के अनुसार बारह सौरमासों के नाम इस प्रकार से हैं–मधु–माधव, शुक्र–शुचि, नभसु–नभस्य, ईष–ऊर्ज, सहस्–सहस्य और तपस्–तपस्य। निम्न तालिका में सौर मासों से सम्बन्धित राशियाँ तथा चन्द्रमासों के नाम दर्शाये जा रहे हैं। सौरमासों और राशियों की समयावधि साथ–2 प्रारम्भ और समाप्त होती है।

क्र.सं.	सौरमास	चन्द्रमास	राशियां
1.	मधु	चैत्र	मीन
2.	माधव	वैशाख	मेष
3.	शुक्र	ज्येष्ठ	वर्षभ्
4.	शुचि	आषाढ़	मिथुन
5.	नभस्	श्रावण	कर्क
6.	नभस्य	भाद्रपद	सिंह
7.	ईष	आश्विन	कन्या
8.	ऊर्ज	कार्तिक	तुला
9.	सहस्	मार्गशीर्ष	वृश्चिक
10.	सहस्य	पौष	धनु
11.	तपस्	माघ	मकर
12.	तपस्य	फाल्गुन	कुम्भ

महाराजा विक्रमादित्य के समय में भारतीय गणितज्ञ और ज्योतिषाचार्य वराह मिहिर के यूनानी ज्योतिषाचार्यों से अच्छे सम्बन्ध थे। उस समय यूनान देश ने भी विज्ञान और खगोलविद्यादि आदि में अच्छी प्रगति की थी। सम्भवतः उसी समय उक्त राशियाँ तथा ग्रहों के नाम पर आधारित ये सोम, मंगल व बुध आदि वार यूनान से आयातित किये गए थे। क्योंकि वैदिक साहित्य–वेद, दर्शन, उपनिषद्, रामायण व महाभारतादि में इनका कोई उल्लेख नहीं है। यजुर्वेद के निम्न मंत्र में समय की सभी ईकाइयों का वर्णन है किन्तु वारों व राशियों आदि का कोई उल्लेख नहीं है–

संवत्सराऽसि परिसत्सरोऽसीदासत्सरोऽसीद्वत्सरासि वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताँ संवत्सरस्ते कल्पताम्। प्रेत्याऽएस्तै सं वतरांच प्र चं सारय। सुपर्णचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवःसीद।। (यजु. 27/45)

thearyasamaj.org

इस मंत्र के भावार्थ में उषा/प्रभात बेला, दिन-रात, शुक्ल-कृष्ण पक्ष, चैत्र-वैशाख आदि मास, वसन्त व ग्रीष्मादि ऋतुएं एवं वर्ष आदि का वर्णन है, किन्तु वारों, राशियों और उत्तरायण-दक्षिणायन आदि का इस मंत्र में कोई उल्लेख नहीं है। लगभग पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व इनका उपयोग भारतीय ज्योतिषाचार्यों ने अपने पंचांगों में अपने स्वार्थपूर्ति के लिए करना प्रारम्भ किया और वेद-विद्याविहीन भारतीयों को जन्मकुण्डली, राशियों व वारों के पाखण्डजाल में फंसाकर भाग्यवादी बना दिया तथा अपनी भावी संतति के लिए घर बैठे-बिठाये आय का साधन निर्मित कर दिया।

प्रकृति के नियमानुसार दिन-रात, मास, ऋतुएं एवं वर्ष आदि का निर्माता सूर्य है। पृथिवी अपनी धुरी पर 24 घण्टों में एक चक्र लगाती है, इसीलिए पृथिवी का जो भाग सूर्य के सामने आता है वहाँ दिन और जो भाग पीछे चला जाता है वहाँ रात होती है। इसी प्रक्रिया के अनुसार जब हमारे देश में दिन होता है तब अमरीका आदि देशों में रात होती है और जब यहाँ रात होती है तब वहाँ दिन होता है। पृथिवी के उत्तर दिशा में 66.5 अंश पर झुकी होने के कारण ऋतुएं और दिन-रात छोटे-बड़े बनते हैं। चन्द्रमा पृथिवी का उपग्रह है इसलिए चन्द्रमास सौरमासों के अनुवर्ति होते हैं अर्थात् जिस तिथि से सौरमास प्रारम्भ होंगे उसके बाद जब भी शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा होगी उसी दिन से सम्बन्धित चन्द्रमास प्रारम्भ होगा। किन्तु पौराणिकों के अनुसार कृष्णपक्ष की एकम् से मास प्रारम्भ होता है और पूर्णिमा के दिन समाप्त किया जाता है जोकि प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है। निम्न तालिका में ईशवी कैलेण्डर की तारीखों के अनुसार सौरमासों व चन्द्रमासों की प्रथम तिथियों के साथ पौराणिकों द्वारा प्रारम्भ चन्द्रमासों की प्रथम तिथियाँ भी दर्शाई गई हैं-

क्र.सं.	ईशवी तारीख	सौरमास की प्रथम तिथि	चन्द्रमासों की प्रथम तिथि	पौराणिक चन्द्रमासों की प्रथम तिथि
1.	20 फरवरी 14	मधु	चैत्र- 02 मार्च 14	चैत्र- 31 मार्च 14 से
2.	22 मार्च 14	माधव	वैशाख- 31 मार्च 14	वैशाख- 16 एप्रेल 14 से
3.	21 एप्रेल 14	शुक्र	ज्येष्ठ- 30 एप्रेल 14	ज्येष्ठ- 15 मई 14 से
4.	22 मई 14	शुचि	आषाढ़- 29 मई 14	आषाढ़- 14 जून 14 से
5.	22 जून 14	नभस्	श्रावण- 28 जून 14	श्रावण- 13 जुलाई 14 से
6.	23 जुलाई 14	नभस्य	भाद्रपद- 27 जुलाई 14	भाद्रपद- 11 अगस्त 14 से
7.	23 अगस्त 14	ईष	आश्विन-26 अगस्त 14	आश्विन-09 सितम्बर 14 से
8.	23 सितम्बर14	ऊर्ज	कार्तिक- 25 सितम्बर 14	कार्तिक- 09 अक्टूबर 14 से
9.	23 अक्टूबर14	सहस्	मार्गशीर्ष-24 अक्टूबर 14	मार्गशीर्ष-07 नवम्बर 14 से
10.	22 नवम्बर 14	सहस्य	पौष- 23 नवम्बर 14	पौष- 07 दिसम्बर 14 से
11.	22 दिसम्बर14	तपस्	माघ- 22 दिसम्बर 14	माघ- 06 जनवरी 14 से
12.	21 जनवरी 14	तपस्य	फाल्गुन- 21 जनवरी 14	फाल्गुन- 04 फरवरी 14 से

-(शेष अगले अंक में)

thearyasamaj.org

अप्रिय अवस्थाओं से निकलने का मार्ग

लेखकः दयाचन्द्र गोयलीय

यह हम पहले पढ़ चुके हैं और अच्छी तरह समझ चुके हैं कि दुःख या विपत्ति एक परिछाई है जो स्थायी सुख की सुन्दर आकृति पर स्वार्थ के बीच में आ जाने से पड़ जाती है और यह संसार एक दर्पण के सदृश है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति केवल अपनी ही परछाई देखता है। अब हम धीरे-धीरे धैर्य और दृढ़ता के साथ उस स्थान पर पहुँचते हैं, जहाँ पर ईश्वरीय नियम को अच्छी तरह से देखा और समझा जा सकता है। ईश्वरीय नियम के ज्ञान से हमें इस बात का भी ज्ञान हो जाएगा कि प्रत्येक वस्तु कार्य कारण के अविनाशभावी सम्बन्ध में जकड़ी हुई है और किसी भी वस्तु का उस नियम से पृथक् होना सम्भव नहीं है। मनुष्य के छोटे से छोटे काम से लेकर देवताओं के बड़े-बड़े कार्यों तक में यह नियम अनवरित रूप से कार्य कर रहा है। कोई भी अवस्था ऐसी नहीं हो सकती जिसमें इस नियम का कार्य एक क्षण भर के लिए भी रुक सके। ऐसा होना सर्वथा असम्भव है, कारण कि ऐसा होने से नियम का ही अभाव हो जाएगा। अतएव, जीवन की प्रत्येक अवस्था नियमबद्ध है और प्रत्येक अवस्था का कारण और भेद उसी में विद्यमान है। यह नियम के 'जैसा मनुष्य बोता है वैसा काटता है' मुक्ति के द्वार पर सुनहरे और चमकीले अक्षरों में खुदा हुआ है। न कोई इससे इन्कार कर सकता है, न कोई इसका विरोध कर सकता है और न कोई इससे बच सकता है। जो आदमी अपना हाथ आग में डालता है, वह उस समय तक जलने की तकलीफ उठाता रहेगा जब तक कि वह अपने हाथ को आग में से बाहर न निकाल ले। दुआ और प्रार्थनाओं से उसकी अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। ठीक यही नियम मानसिक जगत् में काम कर रहा है। राग द्वेष, काम क्रोध, लोभ, मोह, माया ये सब भिन्न-भिन्न प्रकार की अग्नि हैं जो निरंतर जलती रहती हैं और जो कोई इन्हें छुएगा वह अवश्य जलेगा। मन की इन सम्पूर्ण अवस्थाओं का नाम दुःख है और वास्तव में यह नाम यथार्थ और सार्थक है, कारण कि अज्ञान वश इनसे आत्मा ईश्वरीय नियम को बदलना चाहती है। ये मनुष्य के भीतर गड़बड़ पैदा कर देती हैं और कभी न कभी वाह्य में रोग, शोक, दुःख, निराशा, असफलता और दुर्भाग्य के रूप में प्रगट होती हैं। इसके विपरीत प्रेम, प्रीति, सत्यता और पवित्रता शीतल वायु हैं जिनसे आत्मा को शांति मिलती है और चूँकि ये ईश्वरीय नियम के अनुकूल हैं, इस कारण सुख, स्वास्थ्य, आशा और सौभाग्य के रूप में प्रगट होती है।

इस विश्वव्यापी नियम के भली भाँति समझने से, उस मानसिक अवस्था की प्राप्ति होती है जिसका नाम आज्ञा-पालन है। जब हम जान लेंगे कि संसार में प्रेम, न्याय और ऐक्य इस नियम पर स्थित हैं, तब हमें यह भी मालूम हो जाएगा कि जितनी विपरीत और दुःखदायक अवस्थाएँ हैं, वे सब हमारे

thearyasamaj.org

नियम भंग करने के परिणाम हैं। ऐसे ज्ञान से शक्ति और बल बढ़ता है और ऐसे ही ज्ञान से उत्तम जीवन, स्थाई सफलता और आनन्द की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य प्रत्येक दशा में संतोष करता है, और सम्पूर्ण अवस्थाओं को अपनी शिक्षा के आवश्यकीय अंग समझता है, वह सर्व प्रकार की दु:खदाई अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करता है और उन्हें इस प्रकार अपने आधीन कर लेता है कि फिर उनके आने की कोई भी आशंका नहीं रहती, कारण कि नियम-बद्ध कार्य करने से उनका सर्वनाश हो जाता है। ऐसा मनुष्य ही नियम-बद्ध काम करता है। उसने यथार्थ में नियम को अच्छी तरह से समझ लिया है और अपने को नियम रूप बना लिया है। जिस वस्तु पर वह अधिकार प्राप्त करता है, उस पर सदैव के लिए प्राप्त करता है और जो इमारत बनाता है। वह ऐसी बनाता है कि उसका फिर कभी विनाश नहीं हो सकता।

जिस प्रकार दृढ़ता और निर्बलता का कारण हममें विद्यमान है, उसी प्रकार सम्पूर्ण सुख और दु:खों का कारण भी हममें विद्यमान है। जब तक हम अपने अंतरंग को शुद्ध न कर लेंगे, तब तक किसी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती और जब तक नियमित रूप से ज्ञान की वृद्धि न की जाएगी, तब तक सुख से शांति का मिलना नितांत असम्भव है।

तुम कहते हो कि हम अपनी हालत से मजबूर हैं। तुम चाहते हो कि तुम्हें अच्छे अवसर मिलें, तुम्हारा कार्य-क्षेत्र बड़ा हो जाय, तुम्हारी शारीरिक अवस्था अच्छी हो जाए, और शायद तुम अपने मन में अपने भाग्यको भी उलाहना देते होगे जिसने तुम्हारे हाथ पाँव बाँध रक्खे हैं। जो कुछ भी मैं कहता हूँ वह तुम्हारे लिए ही है। तुम उसको ध्यान से सुनो और मेरे शब्दों को अपने हृदय तट पर अंकित कर लो, कारण कि जो कुछ भी मैं तुमसे कहूँगा, वह अक्षर सत्य होगा। "यदि तुम दृढ़ प्रतिज्ञ होकर अपने आंतरिक जीवन को उन्नत बना लोगे, तो तुम्हारी वाह्य अवस्था में भी तुम्हारी इच्छानुसार अवश्य उन्नति हो जाएगी।" मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि पहले पहल यह मार्ग तुम्हें कँकरीला और बंजड़ मालूम होगा, क्योंकि सच्चाई सदा ऐसी ही दिखलाई देती है। यह केवल मोह माया ही है जो चमकीली और भड़कीली होती है। परन्तु यदि तुम उसी मार्ग पर चलने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लो, धैर्य और दृढ़ता के साथ अपने मन को क्रमपूर्वक कार्य करना सिखला दो, अपनी त्रुटियों का समूल नाश कर दो, और अपने बल और आंतरिक शक्तियों का विकास होने दो, तो तुम्हारे वाह्य जीवन में जो परिवर्तन होंगे, उनको देखकर तुम्हें बड़ा आश्चर्य होगा।

जब तुम इस प्रकार कार्य करनां प्रारम्भ कर दोगे, तो तुम्हें बहुत से सुअवसर मिलेंगे और उन सुअवसरों से समुचित लाभ उठाने की शक्ति और ज्ञान तुममें उत्पन्न हो जाएगा। सच्चे सुहृद् बिना बुलाए तुम्हारे पास आ जाएँगे। तुमसे प्रेम, सहानुभूति रखनेवाले मनुष्य तुम्हारे पास उसी प्रकार खिंचे चले आएँगे, जिस प्रकार चुम्बक पत्थर सुई को खींच लेता है और पुस्तकों तथा अन्य वाह्य वस्तुओं की जितनी तुम्हें आवश्यकता होगी, वे सुगमता से तुम्हें मिल जाएँगी।

शायद निर्धनता का बंधन तुम्हें दु:खदाई जान पड़ता हो, तुम असहाय और निराश्रित हो और

thearyasamaj.org

तुम्हारी हार्दिक इच्छा यह हो कि किसी प्रकार तुम्हारा बोझ हल्का हो जाए, परन्तु यह बोझ तनिक भी हल्का नहीं होता और तुम दिन विपत्ति और अन्धकार में ग्रसित होते जाते हो। शायद तुम अपने भाग्य को उलाहना देते हो। अपने जन्म, अपने कुल, अपने माता–पिता अपने स्वामी को दोष देते हो कि उन्होंने व्यर्थ में तुम्हें विपत्ति और निर्धनता में डाल दिया और दूसरों को सुख और ऐश्वर्य प्राप्त है। तुम्हारा इस प्रकार दोष देना और शिकायत करना व्यर्थ है। इससे कोई लाभ नहीं। इस प्रकार की शिकायत करना बिल्कुल छोड़ दो, क्योंकि जिन चीजों को तुम दोष देते हो, उनमें से कोई भी तुम्हारी निर्धनता का कारण नहीं है। तुम्हारी निर्धनता का कारण स्वयं तुम्हारे ही भीतर विद्यमान हैं और जहाँ कारण है, वहीं इसकी औषधि भी है। तुम्हारा शिकायत करना ही इस बात को प्रगट करता है कि तुम ऐसी ही हालत में रहने के योग्य हो, और इससे यह भी पता लगता है कि तुममें श्रद्धा और विश्वास की कमी है, जो उन्नति और उद्योग का मूल साधन है। जिस जगत् की प्रत्येक वस्तु नियमानुसार है, उसमें कोई भी दोष नहीं लगा सकता। यदि कोई मनुष्य स्वतः अपने को दुःख और चिंता में डालता है और व्यर्थ में चिड़चिड़ाता रहता है, तो मानो वह स्वयं आत्मघात करता है। तुम अपनी मानसिक अवस्था के कारण अपनी बेड़ियों को मजबूत करते हो और अज्ञान और अंधकार में फँस रहे हो। तुम अपने जीवन के मार्ग को बदल डालो। तुम्हारा वाह्य जीवन भी स्वयमेव बदल जाएगा। अपने में ज्ञान और विश्वास पैदा करो और अपने को उत्तम अवसरों और उत्कृष्ट वस्तुओं के योग्य बनाओ। सबसे पहले इस बात का ख्याल रक्खो कि जो कुछ तुम्हारे पास है, उसको अच्छी तरह से उपयोग में लाओ और इस धोखे में मत आओ कि तुम छोटे–छोटे लाभों या कार्यों का विचार न करके बड़े–बड़े कार्यों की परवाह न करके बड़े–बड़े कार्यों पर हाथ फैलाओगे, तो तुम्हें कोई स्थाई लाभ न होगा और सम्भव है कि तुम अपने स्थान से फिर पीछे हट जाओ इसलिए कि तुम्हें शिक्षा मिले। जिस प्रकार बालक स्कूल में पहली कक्षा को पास किये बिना दूसरी कक्षा में नहीं चढ़ाया जा सकता, उसी प्रकार तुम्हें उचित है कि पहले जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे अच्छी तरह से उपयोग में लाओ, उससे यथेष्ट लाभ उठाओ, तब तुम्हें अधिक लाभ की प्राप्ति होगी। देखो एक मालिक ने अपने एक नौकर को 5) रु0 दिये, दूसरे को 2) रु0 और तीसरे को 1) रु0। इनमें से पहिले और दूसरे नौकर ने तो मेहनत करके दुगने रुपये कर लिये परन्तु तीसरे ने अपने रुपये को जमीन में गाढ़ दिया और उससे कुछ भी लाभ नहीं उठाया। मालिक को जब इस बात का पता लगा, तो वह उस पर बड़ा नाराज हुआ और उसने वह रुपया भी उससे छीन कर पहले नौकर को दे दिया। इस उदाहरण से स्पष्ट प्रगट है कि जो कुछ हमारे पास है, चाहे वह कितना ही थोड़ा क्यों न हो, उससे हमें लाभ उठाना चाहिये और उसे यथासम्भव अच्छे काम में लगाना चाहिये। यदि हम ऐसा न करेंगे, तो इसका परिणाम होगा कि जो कुछ हमारे पास है, वह भी जाता रहेगा, कारण कि हम अपने ही व्यवहार से इस बात को सिद्ध कर रहे हैं कि हम उसके सर्वदा अयोग्य हैं। अतएव मनुष्य को उचित है कि जो कुछ उसके पास है, जैसी उसकी अवस्था है, उसी पर संतोष करे और उससे क्रमशः उन्नति करे। तुम एक छोटी झोंपड़ी में रहते हो, और तुम्हारे चहुँ ओर ऐसे कारण

thearyasamaj.org

विद्यमान हैं कि जो तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। इस अवस्था में यदि तुम्हें अच्छे और बड़े मकान की इच्छा है, तो तुम्हें चाहिये कि तुम अपनी झोंपड़ी ही को एक छोटा सा स्वर्ग का नमूना बनाकर दिखलाओ। उसे ऐसा साफ और सुथरा रक्खो कि उसमें नाममात्र को भी कहीं कोई धब्बा न रहे। तुमसे जहाँ तक हो सके उसे सुन्दर और रमणीक बनाओ। जिस काम को करो और जिस चीज को धरो उठाओ, बड़ी सावधानी से करो। भोजनशाला को स्वच्छ और सुन्दर रक्खो। चाहे तुम्हारे यहाँ हलवा पूड़ी न बनकर सूखी रोटी और चने का शाक ही बनता हो, परन्तु उसे अत्यन्त स्वादिष्ट बनाओ। यदि तुम्हें अपने झोंपड़े में कालीन या फर्श बिछाने की शक्ति नहीं है तो न सही, अपने कमरे में हर्ष, आनन्द और स्वागत के फर्श बिछाओ और उनको प्रेमयुक्त शब्दों की कीलों से जड़ कर संतोष और दृढ़ता के हथोड़े से ठोक दो। अर्थात् उसी झोंपड़ी में सब मिलकर हर्ष और आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करो। परस्पर में प्रेम और प्रीति का व्यवहार करो और धैर्य और संतोष को धारण करो। ऐसा फर्श न तो धूप से खराब होगा और न कभी काम में आने से घिसेगा।

इस प्रकार अपनी आस-पास की चीजों की कदर करने से तुम उनसे अच्छे हो जाओगे और फिर तुम्हें उनकी आवश्यकता नहीं होगी, तथा सुअवसर के मिलने पर तुम्हें अच्छा घर और अच्छी वस्तुएँ मिल जाएँगी, जो मानो तुम्हारी बाट जोह रही हैं और जिनके योग्य तुमने अपने आपको बना लिया है।

यदि तुम यह चाहते हो कि तुम्हें सोचने और काम करने के लिए अधिक समय मिले और यह समझते हो कि तुम्हें बहुत देर तक सख्त काम करना पड़ता है, तो तुम्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जो कुछ थोड़ा सा समय तुम्हें मिलता है? उससे तुम पूरा-पूरा लाभ उठाते हो या नहीं? यदि तुम उस थोड़े से समय को भी नष्ट कर देते हो, तो तुम्हारे लिए अधिक की इच्छा करना व्यर्थ है, कारण कि तुम उससे भी अधिक आलसी और असावधान हो जाओगे।

-(शेष अगले अंक में)

महापुरुषों की जयन्ती

डॉ0 राजेन्द्रप्रसाद	03 दिसम्बर
खुदीराम बोस	03 दिसम्बर
राजा गोपालाचार्य	10 दिसम्बर
गुरू गोविन्दसिंह	22 दिसम्बर
श्री निवास अयंगर	22 दिसम्बर
पं0 मदनमोहन मालवीय	25 दिसम्बर
शहीद उधमसिंह	26 दिसम्बर
कन्हैयालाल मुंशी	30 दिसम्बर

07 दिसम्बर	झण्डा दिवस
16 दिसम्बर	विजय दिवस (भारत पाक युद्ध)
19 दिसम्बर	गोवा मुक्ति दिवस
25 दिसम्बर	क्रिसमिस डे

महापुरुषों की पुण्यतिथि

सन्त ज्ञानेश्वर	01 दिसम्बर
अरविन्द घोस	05 दिसम्बर
बाबासाहेग अम्बेडकर	06 दिसम्बर
भाई परमानन्द	08 दिसम्बर
पं0 रामप्रसाद बिस्मिल	19 दिसम्बर
अश्फाक उल्ला खान	19 दिसम्बर
रोशनसिंह	19 दिसम्बर
स्वामी श्रद्धानन्द	23 दिसम्बर
डॉ0 होमी भाभा	24 दिसम्बर
सी. राज गोपालचारी	25 दिसम्बर
विक्रमसारा भाई	30 दिसम्बर

thearyasamaj.org

ऋग्वेद   ।।ओ३म्।।   यजुर्वेद

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

श्री विरजानन्द ट्रस्ट, वेदमन्दिर–मथुरा में

चतुर्वेद पारायण यज्ञ

दिनांक 6 दिसम्बर 2014 से 25 दिसम्बर 2014 तक

सभी यज्ञ प्रेमीजनों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी आप सभी की भावना के अनुसार चतुर्वेद–पारायण यज्ञ आपके अपने गुरुकुल वेदमन्दिर, मथुरा में 6 दिसम्बर 2014 से रखा जा रहा है जिसकी पूर्ण आहुति 25 दिसम्बर 2014 को होगी। अतः आप सपरिवार इस यज्ञ–तीर्थ में आमन्त्रित हैं सपरिवार पधारकर इस पुण्य कार्य में सहभागी बनें। यज्ञ का समय प्रतिदिन प्रातः 8 बजे से 11 बजे तक और अपराह्न 2 बजे से सायं 5 बजे तक रहेगा। आप किसी भी सत्र में यजमान बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

यजमान बनने के इच्छुक जन पहले से अपना समय निश्चित कर लें। दिनांक और सत्र लिखकर अवश्य वेदमन्दिर, मथुरा के पते पर भेज दें या फिर दूरभाष द्वारा सूचित कर दें।

निवेदक

(अध्यक्ष)	(मंत्री)	(अधिष्ठाता)
डॉ० सत्यप्रकाश अग्रवाल	बृजभूषण अग्रवाल	आचार्य स्वदेश
		मो. 9456811915

सामवेद   अथर्ववेद

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

thearyasamaj.org

विष मौजूद है जिससे किसी निर्दोष स्त्री-पुरुष को यह रोग न लग जाय और ऐसी सन्तान उत्पन्न हो जो जीते हुए भी मृतक समान है।'' पादरी साहब को ऐसा निराशापूर्ण लेख न लिखना पड़ता यदि वे ईसाई मजहब की संकुचित परिधि से बाहर निकल कर वैदिक धर्म की शिक्षा को पढ़ते। मनु भगवान् ने कैसी पवित्र और उच्च शिक्षा दी है-

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षयामयाव्यपस्मारि श्वित्रि कुष्ठि कुलानि च॥ -अ0 3।6।-7।

'चाहे कितने ही धन-धान्य गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध कुल हो तो भी विवाह सम्बन्ध में निम्न दश कुलों को त्याग दे। जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े-2 लोम, बवासीर, क्षय, दमा, खाँसी, विकृत आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठ युक्त हों उन कुलों की कन्या या वर के साथ विवाह नहीं होना चाहिए।' इसका कारण ऋषि दयानन्द बतलाते हैं-'क्योंकि यह सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं।'

अयोग्यों के विवाह का कारण सच्ची शिक्षा का अभाव है। पहले जब तक यह विश्वास न हो कि मनुष्य जाति का उद्धार हो सकता है तब तक इस काम में सुधारकों की प्रवृत्ति होना ही कठिन है। जन साधारण प्रायः यह कहकर सन्तोष कर लेते हैं कि भाग्य को कोई बदल नहीं सकता। जब बना हुआ भाग्य संचित कर्मों का ही समूह है तब जहाँ कुकर्मों के आधिक्य से बुरा भाग्य प्रारब्ध बन गया वहाँ उत्तम कर्मों के प्राबल्य से अच्छा प्रारब्ध भी बन सकता है। ऐसा दृढ़ विश्वास लेकर जब विद्या के प्रकाश में काम करना आरम्भ किया जायगा तो बिना अधिक प्रयास के ही परिवर्तन आरम्भ हो जायगा।

हमारी जाति में इस समय ही कमी है कि इस प्रकार के अपूर्व विश्वास का अभाव है। सच्चा विश्वास पर्वतों को चीरता और लोहे के तवों में छेद कर देता है-परन्तु दृढ़ श्रद्धा जब हो तब न? ब्रह्मचर्य के बल पर और उसके महत्व पर श्रद्धा न हो तो मनुष्य जाति का सुधार कठिन है। किसी कवि ने कहा है-

''श्रुति मात्र रसाः सर्वे प्रधान पुरुषेश्वराः।
श्रद्धा मात्रेण गृह्यन्ते न करेण न चक्षुषा॥''

जब ब्रह्मा और उसका ज्ञान 'वेद' भी श्रद्धा के लिए अग्राह्य नहीं, फिर उसका आश्रय लेकर कौन-सा कठिन दुर्ग है जिस पर सदाचारी मनुष्य विजय नहीं प्राप्त कर सकता? श्रद्धा का आवेश बिना सचाई के नहीं होता।

श्रद्धासम्पन्न मनुष्य सर्वसाधारण जनता की दृष्टि में पागल-सा दिखाई देता है, परन्तु संसार में पाप और अविद्या दुर्ग गिराने वाले पागल ही हुआ करते हैं। ब्रह्मचर्य और पवित्रता को स्थापन करने में ऐसे ही मनुष्य कृतकार्य हो सकते हैं जिन्हें इनकी श्रेष्ठता पर पूर्ण विश्वास हो, वही दूसरों को इस पवित्र मार्ग पर चला सकते हैं।

जहाँ राजनैतिक कृतकार्यता के सामने सतीत्व तथा शुद्धता का कुछ भी ध्यान न रखा जाय, सामयिक सफलता के लिए धर्म का बलिदान कर दिया जाय वहाँ राजनैतिक, सामाजिक वा जातीय सफलता भी चिरस्थायी नहीं होती। स्वजाति पर विदेशियों की कुनीति का ऐसा ही प्रभाव पड़ रहा है। कुछ समय पूर्व यवनों में इस विचार का खुला प्रचार था कि काफिर की स्पिरिट को दबाने के लिए द्विजों की स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करना चाहिए। वह भाव इस समय भारत में फैलता जाता है। चोरी से चोरी तथा झूठ से झूठ को जीतने का प्रचार हो चला है। इस भयानक अवस्था में यह प्रचार करने की अत्यन्त आवश्यकता है कि पवित्रता धर्म है और इसलिए उसको बड़े से बड़े व्यक्तिगत, सामूहिक तथा राष्ट्रीय लाभ पर बलिदान करना, अपने सर्वस्व का नाश करना है। परमेश्वर करे ऐसे पागल पैदा हों जो मनुष्यों को ब्रह्मचर्य और सदाचार की पवित्र वेदी पर मानापमान तथा सर्व पाशवीय भावों को स्वाहा करना सिखावे तभी मनुष्य जाति का सुधार सम्भव है। ❁❁❁

thearyasamaj.org

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण	150.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शंकर सर्वस्व	120.00	महिला गीतांजलि	10.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	क्या भूत होते हैं	10.00
नारी सर्वस्व	60.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
संस्कार चन्द्रिका प्रथम भाग	40.00	सच्चे गुच्छे	8.00
विदुर नीति	40.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	नवग्रह समीक्षा	6.00
चाणक्य नीति	40.00	आर्यसमाज और श्रीराम	6.00
वेद प्रभा	30.00	आचार्य श्रीराम शर्मा : एक सरल चिन्तन	5.00
शान्ति कथा	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
नित्य कर्म विधि	30.00	गायत्री गौरव	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश	25.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
यज्ञमय जीवन (प्रेस में)		सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
दो मित्रों की बातें	25.00	जीजा साले की बातें	5.00
मील का पत्थर (प्रेस में)		भागवत के नमकीन चुटकुले	5.00
सुमंगली (प्रेस में)		आदर्श पत्नी	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2014 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....
....
....
....
.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मो. 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित